इग्नू
जन–जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

एम एच डी-21
मीरा का विशेष अध्ययन

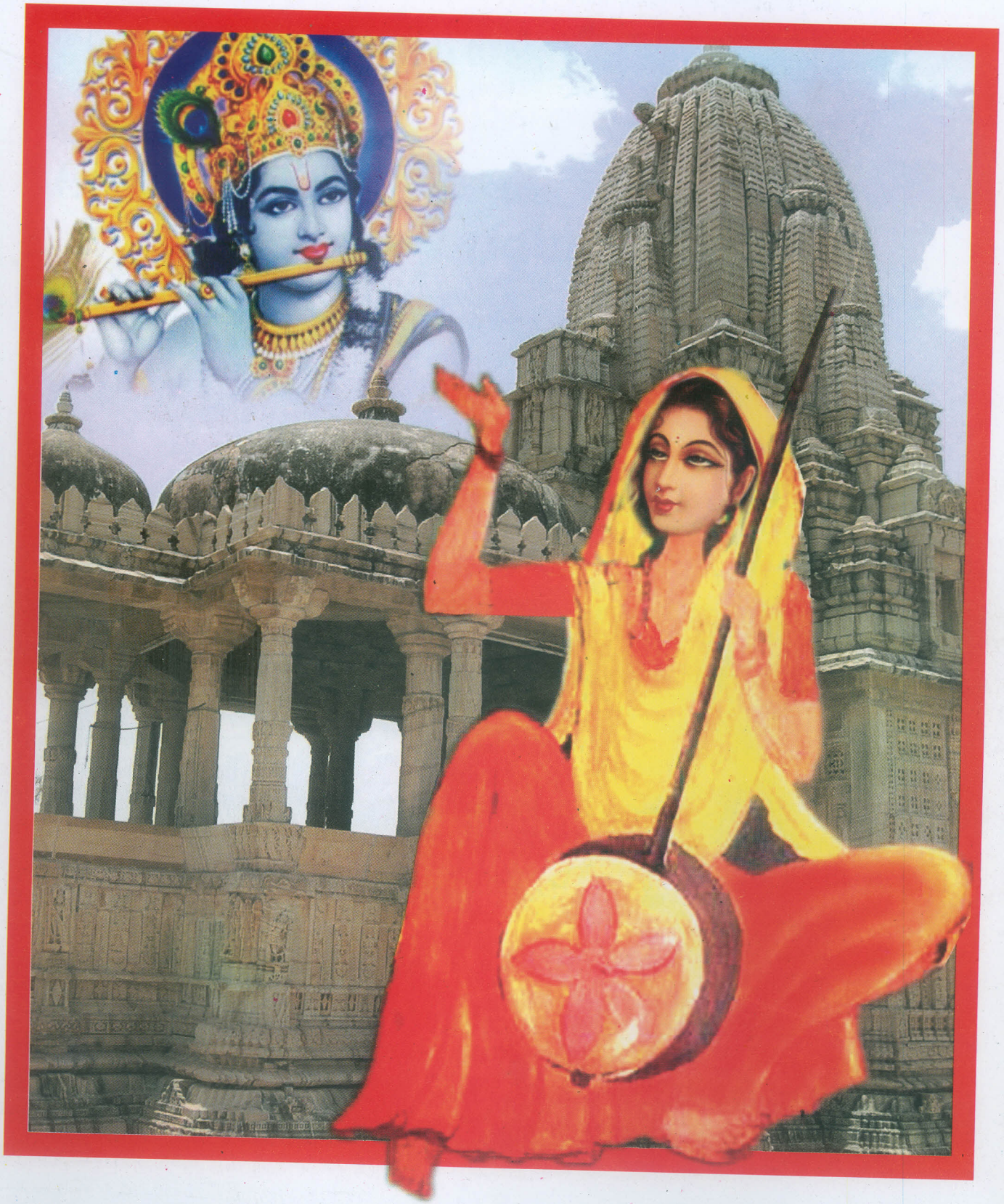

आज के समय में मीरा का महत्व 4

"शिक्षा मानव को बन्धनों से मुक्त करती है और आज के युग में तो यह लोकतंत्र की भावना का आधार भी है। जन्म तथा अन्य कारणों से उत्पन्न जाति एवं वर्गगत विषमताओं को दूर करते हुए मनुष्य को इन सबसे ऊपर उठाती है।"

– इन्दिरा गांधी

"Education is a liberating force, and in our age it is also a democratising force, cutting across the barriers of caste and class, smoothing out inequalities imposed by birth and other circumstances."

– Indira Gandhi

इग्नू
जन-जन का विश्वविद्यालय

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

एम एच डी-21
मीरा का विशेष अध्ययन

खंड

4

आज के समय में मीरा का महत्व

इकाई 16

स्त्री विमर्श और मीरा 5

इकाई 17

हिन्दी ओलाचना में मीरा 26

इकाई 18

मीरा की प्रासंगिकता 42

खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें 60

विशेषज्ञ समिति

प्रो. नित्यानंद तिवारी (सेवानिवृत्त)
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. मैनेजर पाण्डेय (सेवानिवृत्त)
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

स्वर्गीय. प्रो. कमला प्रसाद

प्रो. चन्द्रकला पांडेय
कलकत्ता विश्वविद्यालय
कोलकाता

प्रो. ए. अरविन्दाक्षन
कोचीन विज्ञान एवं तकनीकी
विश्वविद्यालय, कोचीन

प्रो. नूरजहाँ बेगम
केंद्रीय विश्वविद्यालय
हैदराबाद

संकाय सदस्य
प्रो. जवरीमल्ल पारख
प्रो. रीतारानी पालीवाल (सेवानिवृत्त)
प्रो. सत्यकाम
प्रो. शत्रुघ्न कुमार
प्रो. विमल थोरात (सेवानिवृत्त)
डॉ. स्मिता चतुर्वेदी
डॉ. जितेन्द्र श्रीवास्तव

पाठ्यक्रम संकल्पना
प्रो. रामबक्ष
डॉ. स्मिता चतुर्वेदी

पाठ्यक्रम निर्माण

इकाई लेखक	इकाई संख्या
प्रो. रोहिणी अग्रवाल महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय रोहतक	16
प्रो. रामबक्ष जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय नई दिल्ली	17
डॉ. अर्चना वर्मा मिराण्डा हाउस, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली	18

पाठ्यक्रम संपादक
प्रो. मैनेजर पाण्डेय (सेवानिवृत्त)
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

पाठ्यक्रम समन्वयक
डॉ. स्मिता चतुर्वेदी
मानविकी विद्यापीठ
इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

खंड संपादक
डॉ. स्मिता चतुर्वेदी

सहयोग
सुश्री रेखा कुर्रे, आर.टी.ए.
मानविकी विद्यापीठ
इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

सचिवालयीय सहयोग
सुश्री हेमलता देवी
मानविकी विद्यापीठ
इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

आवरण
अरविन्दर चावला

मुद्रण निर्माण

श्री सी. एन. पाण्डेय
अनुभाग अधिकारी
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

नवम्बर, 2014

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2014

ISBN-978-81-266-6821-2

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफ (मुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के बारे में और अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली-110 068 से प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से प्रो. सुनैना कुमार, निदेशक (मानविकी विद्यापीठ) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

लेजर टाइप सेटिंग : राजश्री कम्प्यूटर्स, वी–166ए, भगवती विहार, (नजदीक सेक्टर 2 द्वारका), उत्तम नगर, नई दिल्ली–110059

मुद्रित : आकाशदीप प्रिंटर्स, 20–अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली–110002

खण्ड परिचय

यह खण्ड इस पाठ्यक्रम का चतुर्थ खण्ड है। इस खण्ड में **'आज के समय में मीरा का महत्व'** पर गहन विचार विमर्श किया गया है।

प्रस्तुत खण्ड में कुल तीन इकाइयाँ हैं। यह खंड वर्तमान समय में मीरा की प्रासंगिकता, मीरा का महत्व, स्त्री विमर्श में मीरा और आलोचना के क्षेत्र में मीरा को ध्यान में रखकर तैयार किया गया है। इस खण्ड की पहली इकाई (इकाई-16) में **'स्त्री विमर्श और मीरा'** की चर्चा की गई है। इस इकाई में स्त्री विमर्श का संक्षिप्त परिचय देने के साथ-साथ मीरा कालीन समाज में स्त्री की स्थिति, मीरा का स्त्री विमर्श (पितृसत्तात्मक व्यवस्था के प्रति विद्रोह के स्वर), मीरा के काव्य में स्त्री सशक्तीकरण के स्वर और पितृसत्तात्मक व्यवस्था का आंतरिकीकरण तथा मीरा की विवशताओं की चर्चा की गई है।

इस खण्ड की दूसरी इकाई (इकाई-17) में **'हिन्दी आलोचना में मीरा'** की चर्चा की गई है। इसमें मीरा को लेकर हिन्दी आलोचना के महत्वपूर्ण पक्षों जैसे-भक्तिपरक लेखन, इतिहास ग्रंथों में मीरा, मीरा के प्रामाणिक पाठ की खोज, मीरा का सम्प्रदाय, मीरा की कविता में जोगी का स्वरूप, दलित समाज और मीरा, महात्मा गांधी और मीरा के साथ-साथ अंत में मीरा की काव्य कला पर भी आलोचनात्मक दृष्टि से विचार किया गया है। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप हिन्दी आलोचना में व्यक्त मीरा की छवि के आधार पर मीरा के जीवन और कविता को आलोचनात्मक संदर्भ में समझ सकेंगे।

इस खण्ड की अंतिम इकाई (इकाई-18) में **'मीरा की प्रासंगिकता'** को उजागर किया गया है। इस इकाई में वर्तमान में अतीत की प्रासंगिकता का अर्थ तो स्पष्ट किया ही गया है, साथ ही, अपने युग और परिवेश से बाहर तथा आधुनिक युग और परिवेश में मीरा की प्रासंगिकता के प्रश्न पर विस्तार से चर्चा की गई है। मीरा की प्रासंगिकता के विविध आयामों पर भी इस इकाई में गहन चिन्तन किया गया है।

इस खंड के अध्ययन के बाद आप आज के संदर्भ में मीरा के महत्व को जान सकेंगे। मीरा का महत्व स्त्री विमर्श के क्षेत्र में, हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में होने के साथ ही साथ मीरा की प्रासंगिकता अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्रों में भी रही है। आज के समय में मीरा के महत्व के विविध पहलुओं का विस्तृत अध्ययन आप इस खंड में करेंगे।

इस खंड के अंत में कुछ आवश्यक संदर्भ ग्रंथों की सूची भी दी गई है। हम आपसे अपेक्षा करते हैं कि आप अपनी सुविधा के अनुसार अन्य ग्रंथों का भी अध्ययन करें, जिससे विषय के संदर्भ में आपकी दृष्टि का और अधिक विस्तार हो सके।

शुभकामनाओं के साथ!

इकाई 16 स्त्री विमर्श और मीरा

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 स्त्री विमर्श : संक्षिप्त परिचय

16.3 मीराकालीन समाज में स्त्री की स्थिति

16.4 मीरा का स्त्री विमर्श

16.4.1 मीरा के काव्य में पितृसत्तात्मक व्यवस्था के प्रति विद्रोह के स्वर

16.5 मीरा की कविता में स्त्री सशक्तीकरण के स्वर

16.5.1 'स्व' की पड़ताल और दैहिकता का अकुंठ स्वीकार

16.5.2 दाम्पत्य सम्बन्ध में समानता की कामना और स्वप्न-पुरुष की तलाश

16.5.3 आत्मप्रसार की कामना और स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता

16.6 मीरा की सीमा : पितृसत्तात्मक व्यवस्था का आंतरिकीकरण

16.7 सारांश

16.8 अभ्यास प्रश्न

16.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- स्त्री विमर्श के बारे में आधारभूत जानकारी प्राप्त कर सकेंगे;
- मीराकालीन समाज में स्त्री की स्थिति का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे;
- पितृसत्तात्मक व्यवस्था के प्रति मीरा के विद्रोह से परिचित हो सकेंगे;
- सशक्त स्त्री के रूप में मीरा के व्यक्तित्व के सकारात्मक पक्षों से परिचित हो सकेंगे;
- मीरा के विरह वर्णन के जरिए औसत स्त्री के मनोविज्ञान को जान सकेंगे;
- पितृसत्तात्मक व्यवस्था का आंतरिकीकरण करती मीरा की विवशताओं को जान सकेंगे; और
- स्त्री-विमर्शकार के रूप में मीरा का मूल्यांकन कर सकेंगे।

16.1 प्रस्तावना

साहित्य समाज का दर्पण है। जब वह युगीन यथार्थ को प्रतिबिंबित करता है तो उसका लक्ष्य दोहरा होता है। एक लक्ष्य है युगीन विकृतियों, विसंगतियों और रुग्णताओं को विश्लेषण का विषय बना कर उनके निवारण हेतु समुचित समाधान खोजना। दूसरा, अपने अनुभव-सत्य से गुजर कर बेहतर भविष्य के निर्माण हेतु भावी पीढ़ी का दिशा-निर्देश करना। मीरा का काव्य स्त्री-मानस की पीड़ा को शब्द देता है। मीरा के युग में स्त्री

आत्माभिव्यक्ति के लिए स्वतंत्र नहीं थी। वह पुरुष के उपयोग-उपभोग के लिए थी और पुरुष की दृष्टि से देखी जाती थी। स्त्री के सुख-दुख, सपने-आकांक्षाएँ, वर्तमान-भविष्य उसके अपने भीतर निहित नहीं थे, अपितु पुरुष-समाज द्वारा प्रत्यारोपित किए जाते थे। इसलिए स्त्री की नजर से स्त्री-मानस को पढ़ने का संस्कार और आवश्यकता मध्ययुग में कहीं दिखाई नहीं देती। सन् 1498 से सन् 1546 तक की जिस कालावधि में मीरा के होने का अनुमान इतिहासकार लगाते हैं, वह काल हिंदी साहित्य में भक्तिकाल के नाम से जाना जाता है। भक्तिकाल सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक उत्पीड़न के विरोध में उठा एक सांस्कृतिक आंदोलन है जो व्यक्ति की ऐहिक-ऐन्द्रिक सत्ता को झुठला कर परलोक की सम्मोहक अवधारणा को समक्ष रखता है। चाहे इसे नैराश्य से उबरने का जिजीविषापूर्ण प्रयास कहा जाए या अपनी क्षीण होती अस्मिता को बचाने की अकुलाहट – भक्ति आंदोलन ने पारलौकिकता के गाढ़े आवरण के बीच व्यक्ति की भौतिक सत्ता, समाज-व्यवस्था और सम्बन्धों के महीन अंतर्जाल को गहराई से देखा-परखा है। अलबत्ता लोक और परलोक के बीच अपने को स्थापित करने का द्वंद्व भक्ति साहित्य में साफ झलकता है। यह द्वंद्वग्रस्तता आत्मस्वीकृति चाहती है तो तत्काल आत्मनिषेध की गूँजती हुंकार से भयभीत हो पीछे हट जाती है। इसलिए विद्रोह और यथास्थितिवाद भक्तिकाल में साथ-साथ चले हैं। परवर्ती आलोचना इन द्वंद्वों को चिह्नित करने की अपेक्षा साहित्येतिहास के कालविभाजन और नामकरण को सटीक सिद्ध करने की कोशिश में सम्वत् 1350 से सम्वत् 1700 तक के मध्ययुगीन कालखंड को भक्ति-धारा से आप्लावित होने का पूर्वाग्रह लेकर चली है। यही कारण है कि वह मीरा के काव्य की भास्वर आत्माभिव्यक्ति को अलक्षित कर कबीर, सूर, तुलसी, रसखान सरीखे भक्त कवियों की कोटि में रखती आई है। परिणामस्वरूप मीरा-काव्य में निहित परिवार, कुलकानि, राजसत्ता के प्रति विद्रोह की तीव्र टंकार को लौकिक जीवन का निषेध कर अलौकिक ईश्वरीय सत्ता से जुड़ने की ललक के रूप में पढ़ा समझा गया।

आलोचना की यह परंपरागत दृष्टि मीरा की कविता के मूल स्वर के साथ न्याय नहीं कर पाती। मीरा-काव्य के केन्द्र में है मीरा के भीतर की निखालिस स्त्री जो पुरुष दृष्टि की चौकसी और दबाव से मुक्त हो अपने मनोजगत् में दहकती लालसाओं को निर्भीक भाव से व्यक्त कर रही है। वह अपने विरोध की प्रचंडता को भी जानती है, परकीय प्रेम के प्रति दुर्निवार आकर्षण की 'अनैतिकता' को भी और अकेले समाज से टकराने के जोखिम को भी। आज की आलोचना स्त्री विमर्श के नाम पर स्त्री की आत्माभिव्यक्ति को व्यापक सामाजिक संदर्भ में देखने की कोशिश करती है। प्रस्तुत इकाई में हम स्त्री विमर्श के संदर्भ में मीरा की कविता का मूल्यांकन करने की चेष्टा करेंगे।

स्त्री विमर्श अस्मिता आंदोलन है। यह हाशिए पर धकेल दी गई अस्मिताओं को पुनः केन्द्र में लाने और उनकी मानवीय गरिमा को पुनर्प्रतिष्ठित करने का महाभियान है। स्त्री विमर्श अपनी मूल चेतना में स्त्री को पराधीन बनाने वाली पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था का विश्लेषण करता है। यह स्त्री को दोयम दर्जे का प्राणी मानने का विरोध करता है और स्त्री को एक जीवंत मानवीय इकाई समझने का संस्कार देता है। स्त्री विमर्श पितृसत्तात्मक व्यवस्था की पड़ताल करने के उपक्रम में विवाह संस्था, धर्म, न्याय और मीडिया की स्त्रीविरोध भूमिका को प्रकाश में लाता है। यह ठीक वही भावोच्छ्वास है जो मीरा-काव्य में सर्वत्र बिखरा मिलता है। मीरा के काव्य में सर्वाधिक मुखर है विवाह संस्था के प्रति असंतोष का भाव, जो राणाजी के जानलेवा षड्यंत्र और सास-ननद के उत्पीड़न के ज़रिए उभरता है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था सामंती मानसिकता का प्रतिफलन है जिसे मीरा-काव्य में राजसत्ता के दमनकारी स्वरूप में देखा जा सकता है।

स्त्री विमर्श, स्त्री की स्वतंत्र स्वायत्त मानवीय इयत्ता को प्रतिष्ठित करना चाहता है। इसके लिए वह स्त्री की आर्थिक आत्मनिर्भरता, घर से बाहर निकल कर अपना सामाजिक दायरा

बढ़ाने की स्वतंत्रता और हर अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थिति में स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता का पक्षधर है। मीरा के काव्य की स्त्री में आज के स्त्री विमर्श की अनुगूँजें स्पष्ट सुनी जा सकती हैं। वह निर्भीक और निर्णयसक्षम स्त्री ही नहीं, चारदीवारी का अतिक्रमण कर अपना सामाजिक दायरा बनाती और लोकतांत्रिक मूल्यों की प्रतिष्ठा करती स्त्री भी है। ये विशेषताएँ मीरा को हिंदी साहित्य जगत की पहली स्त्री विमर्शकार बनाती हैं। अंतर केवल यह है कि मीरा के सामने स्त्री विमर्श की गढ़ी हुई सैद्धांतिकी मौजूद नहीं थी। अपने भीतर की मानवीय पुकारों को गूँथ कर उसने स्त्री मुक्ति और मुक्त मानव की परिकल्पना समाज और समय के समक्ष रखी है। प्रस्तुत इकाई में हम स्त्री विमर्शकार के रूप में मीरा-काव्य की विशेषताओं और सीमाओं का विस्तृत विश्लेषण करेंगे।

16.2 स्त्री विमर्श : संक्षिप्त परिचय

विमर्श का अर्थ है जीवंत बहस। किसी भी समस्या या स्थिति को एक कोण से न देख कर भिन्न मानसिकताओं, दृष्टियों, संस्कारों और वैचारिक प्रतिबद्धताओं का समाहार करते हुए उलट-पुलट कर देखना; उसे समग्रता में समझने की कोशिश करना ; और फिर मानवीय संदर्भों में निष्कर्ष प्राप्ति की चेष्टा करना। उल्लेखनीय है कि इस प्रक्रिया में निष्कर्ष अंतिम निर्णय की तरह थोपे नहीं जाते वरन् उन्हें समय के साथ मुठभेड़ कर नया स्वरूप ग्रहण करने की स्वतंत्रता दी जाती है। हिंदी में विमर्श शब्द अंग्रेजी के Discourse शब्द से आया है जिसका अर्थ है वर्ण्य विषय पर सुदीर्घ एवं गंभीर चिंतन-मनन। इस प्रकार स्त्री विमर्श का अर्थ है स्त्री को केन्द्र में रख कर समाज, संस्कृति, परम्परा एवं इतिहास का पुनरीक्षण करते हुए स्त्री की स्थिति पर मानवीय दृष्टि से विचार करने की अनवरत प्रक्रिया। स्पष्ट है कि स्त्री विमर्श के अंतर्गत अतीत या समकालीनता प्रमुख नहीं रहती वरन भूत, वर्तमान एवं भविष्य तीनों कालखंडों पर एक-दूसरे की अन्विति एवं संगति में विश्लेषण करने का भाव प्रधान रहता है। स्त्री विमर्श, स्त्री चेतना के प्रसार का आख्यान है। चेतना मूलतः मूल्यपरक इकाई है जो स्वभावतः परिवेशगत दबावों से उत्पन्न होती है और अनिवार्यतः परिवेश का विखंडन करती है। अतः स्त्री विमर्श परम्परा और व्यवस्था के विखंडन का शास्त्र भी है।

स्त्री को लेकर भारतीय साहित्य, दर्शन एवं धर्मशास्त्रों में चिंतन की सुदीर्घ परम्परा रही है जहाँ स्त्री की सम्पूर्ण सत्ता को भोग्या, अबला, ललना, कामिनी, रमणी आदि विशेषणों के साथ हेय एवं पुरुष सापेक्ष रूप में चित्रित किया गया है। इसका प्रमुख कारण यह है कि प्राचीन एवं मध्ययुगीन सभी रचयिता एवं टीकाकार पुरुष थे। दूसरे, मातृसत्तात्मक व्यवस्था के अपदस्थ होने के बाद से समाज में पितृसत्तात्मक व्यवस्था का विधान रहा है। फलतः स्वाभाविक था कि पुरुष के संदर्भ में पुरुष दृष्टि द्वारा स्त्री को देखा जाता। इसलिए पुरुष की श्रेष्ठता, सम्मान, स्थान, शक्ति, अधिकार और स्वार्थ की रक्षा के लिए धर्मशास्त्रों ने अनेक ऐसे आप्तवचनों, सूत्रों, श्लोकों की रचना की जिन्होंने स्त्रियों के जीवन को अनेक सामाजिक-नैतिक अर्गलाओं में बाँध दिया। जैसे 'ऐतरेय ब्राह्मण' ग्रंथ उसी नारी को उत्तम समझता है जो अपने पति को संतुष्ट करती है, पुत्र संतान को जन्म देती है और पति से बढ़-चढ़ कर कभी कुछ नहीं कहती। आपस्तम्ब धर्मसूत्र स्त्री के लिए उपनयन संस्कार, होम-हवन, वेद अध्ययन निषिद्ध मानता है। कुलवधू एवं गणिका दोनों रूपों में स्त्री का मात्र एक ही लक्ष्य है पुरुष की भोग तुष्टि करना। यही नहीं, वह मानता है कि काली चिड़िया, गिद्ध, नेवला, छछूंदर और कुत्ते की हत्या करने पर प्रायश्चित का जो विधान है, स्त्री-हत्या एवं शूद्र-हत्या करने पर भी वही प्रायश्चित करना पड़ता है। इसी तरह मुस्लिम धर्मग्रंथ सूरा बकारा की आयत 223 में स्त्री को उसके पति द्वारा चरने के लिए तैयार 'अनाज का खेत' कहा गया तो 'बहिश्त की कुंजी' में स्त्री को कुछ नसीहतें दी गई हैं

कि ''आपके पति आपको जैसा चलाना चाहें, आप उसी तरह चलिए और वे जैसा भी करें, आप उसी में संतुष्ट रहें। किसी भी काम में और किसी भी बात में उनके खिलाफ मत जाइए'' तथा ''जिसका पति पागल, जाहिल या बेवकूफ है, उसके लिए उसे ही आसमान का चांद मानना चाहिए उसके पैरों तले सिर झुका कर जिंदगी काटने से ही दूसरे जन्म में बहिश्त का अमन चैन भोग सकेंगी''। उल्लेखनीय है कि स्त्री को लेकर भारत ही नहीं, विश्व की समूची सभ्यताएँ, संस्कृतियाँ एवं साहित्य निरपेक्ष चिंतन करने में असमर्थ रहे हैं। इनमें प्लेटो, अरस्तु, हीगल, कांट आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

स्त्री विमर्श चिंतन की इस रुग्ण रूढ़ परिपाटी का विरोध करता है। वस्तुतः यह आधुनिक युग की उदारवादी सकारात्मक दृष्टि का प्रतिफलन है। स्त्री विमर्श अपनी मूल प्रपत्ति में स्त्री और पुरुष – दो भिन्न जैविक इकाइयों को परस्पर पूरक या अन्योन्याश्रित जैसे विशेषणों से ढाँप कर विश्लेषित नहीं करता, वरन दोनों की स्वतंत्र अस्मिता एवं सत्ता पर बल देते हुए एक जीवंत मानवीय इकाई (living human being) के रूप में अध्ययन करने का नव संस्कार देता है। यह स्त्री को भोग्या-वस्तु, श्रद्धा-योनि किसी भी कोटि में रखे जाने की परम्परागत मान्यताओं का विरोध करते हुए उन तमाम समाजशास्त्रीय संरचनाओं की पड़ताल कर लेना चाहता है जो स्त्री को हीन और दोयम दर्जे का प्राणी घोषित करती हैं। इस संदर्भ में तीन स्त्रीवादी चिंतकों – वर्जीनिया वुल्फ, सीमोन द बउवार एवं महादेवी वर्मा – के विचार अवलोकनीय हैं। वर्जीनिया वुल्फ ('अ रूम ऑव वन्स ओन') मानती हैं कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था के स्त्रीविषयक आप्त वचनों को शक की निगाह से देखा जाना चाहिए क्योंकि वे ''भावना के लाल प्रकाश'' में लिखी गई उक्तियाँ हैं, 'सत्य के श्वेत प्रकाश' में नहीं। सीमोन द बउवार (द सैकिंड सैक्स') वर्जीनिया वुल्फ से पूरी तरह सहमत हैं कि ''अब तक औरत के बारे में पुरुष ने जो कुछ भी लिखा, उस पूरे पर शक किया जाना चाहिए क्योंकि लिखने वाला न्यायाधीश और अपराधी दोनों है''। वर्जीनिया वुल्फ की मान्यता है कि जो लोग स्त्रियों की हीनावस्था पर कुछ ज्यादा ही जोर देते हैं, दरअसल वे अर्धचेतनावस्था में उन्हें हीन सिद्ध करके अपनी श्रेष्ठता बनाने की बौद्धिक कवायद भर कर रहे होते हैं। श्रेण्य साहित्य से लेकर समकालीन साहित्य का अध्ययन करने के बाद वे इस निष्कर्ष पर पहुँचती हैं कि ''अधूरी एवं विकृत जानकारी'' के कारण पुरुषों ने स्त्री को जिस रूप में चित्रित किया है, वह यथार्थ जगत की जीती-जागती स्त्री से कोसों दूर है। महादेवी वर्मा (शृंखला की कड़ियां') इसे स्त्री जाति के लिए ही नहीं, सम्पूर्ण मनुष्य जाति के लिए दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति मानती हैं। वे इस बात से क्षुब्ध हैं कि क्यों ''स्त्री शून्य के समान पुरुष की इकाई के साथ सब कुछ है, परंतु उससे रहित कुछ नहीं।'' सीमोन द बउवार इस सवाल का जवाब तलाशते हुए स्वीकरती हैं कि स्त्री के स्वभाव, विश्वास, मान्यताएँ, नैतिकता, रुचि और व्यवहार का विवेचन उसकी स्थिति द्वारा होता है। चूँकि वह जानती है कि वह सर्वोपरि स्थान नहीं प्राप्त कर सकती, इसलिए पुरुषोचित कहे जाने वाले गुणों यथा वीरता, विद्रोह, सृजन और कल्पना के ऊँचे आदर्शों से अलग हट कर स्त्रियोचित माने जाने वाले सीमित दायरे में ही स्वयं को सुरक्षित-संरक्षित समझने लगती है। समर्पण के कारण उपजी यह वैचारिक जड़ता अंततः एक ऐसे दुष्चक्र की रचना करती है जहाँ अपनी स्थिति को आत्मदया, आत्मनिषेध, आत्महंता तक लाकर वह स्वयं पितृसत्तात्मक व्यवस्था के हाथ मजबूत करने लगती है। 'मनुष्य' होने की न्यूनतम गरिमा से विहीन स्त्री को उसकी स्वतंत्र जीवंत अस्मिता से परिचित करके प्रदीप्त करना ही स्त्री विमर्श का मूल लक्ष्य है। यह स्त्री एवं समाज की मुक्ति की सामूहिक चेष्टा का नाम है।

स्त्री विमर्श समाज में स्त्री एवं पुरुष दोनों की तुलनात्मक स्थिति पर तटस्थ एवं संवेदनात्मक ढंग से विचार करने का आह्वान है। इसकी संवेदना का केन्द्रबिंदु समाज है किंतु विश्लेषण का मूल घटक है समाजशास्त्र। अतः इसके स्वरूप एवं भविष्य को

समझने के लिए समाजशास्त्रीय दृष्टि से पितृसत्तात्मक व्यवस्था की गहन पड़ताल अनिवार्य है। उग्र उन्मूलनवादी स्त्री चिंतक मानते हैं कि स्त्री की पराधीनता तथा पितृसत्तात्मक व्यवस्था के उदय का कारण था स्त्री की यौनिकता एवं प्रजनन क्षमता पर पुरुष का पूर्ण नियंत्रण। एलिजाबेथ फिशर की मान्यता है कि गर्भावस्था एवं प्रजनन के दौरान स्त्रियों की शारीरिक अक्षमता, पशुओं को सिधाने की कला तथा अपनी मूलभूत हिंसक प्रवृत्ति के कारण पुरुष ने बलात्कार के जरिए स्त्री की यौनिकता, मानसिकता एवं शरीर पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया। स्त्री 'आखेट' की जा सकने वाली 'वस्तु' बन गई और इस प्रकार समाज-व्यवस्था की संरचना और संचालन में पुरुष की केन्द्रीय भूमिका सशक्त होती गई।

पितृसत्तात्मक व्यवस्था की उत्पत्ति को लेकर भले ही विद्वानों में मतभेद हो, इसके स्वरूप पर विचार करते हुए वे एकमत से पुरुषों द्वारा स्त्री को पराधीन बनाने वाले क्षेत्रों एवं संस्थाओं का उल्लेख करते हैं। ये क्षेत्र हैं : स्त्री के श्रम पर अधिकार, स्त्री की प्रजनन शक्ति पर अधिकार, स्त्री की यौनिकता पर अधिकार, स्त्री की गतिशीलता पर नियंत्रण तथा स्त्री को निजी सम्पत्ति एवं आर्थिक स्वतंत्रता के अधिकार से वंचित रखना; और पराधीन बनाने वाली संस्थाएँ हैं : परिवार, धर्म, न्याय, शिक्षा एवं मीडिया। स्त्री विमर्श पितृसत्तात्मक व्यवस्था के पुनरीक्षण का महाख्यान है। यह जीवंत मानवीय इकाई के रूप में स्त्री को समझने का मानवीय प्रतिवेदन है जहाँ सभी पूर्वग्रह एवं मान्यताएँ निरस्त हो जाती हैं तथा तटस्थ विश्लेषण के आलोक में जमींदोज सच्चाइयाँ बाहर आने लगती हैं। स्त्री विमर्श, स्त्री अधिकारों एवं स्त्री मुक्ति का मुद्दा उठा कर पुरुष के प्रति घृणा या प्रतिशोध की भावना का प्रसार नहीं करना चाहता, वरन स्त्री के लिए उन सभी मुक्ति-द्वारों को खोल देना चाहता है जिन पर किसी भी मनुष्य का नैसर्गिक अधिकार है। मीरा के काव्य में इस अनुगूँज को दूर तक सुना जा सकता है।

संक्षेप में, स्त्री विमर्श एक ग्लोबल अवधारणा ही नहीं, मूल्यांकन का एक नया मानदंड और अध्ययन की एक नई दृष्टि है जो स्त्री को मानवीय गरिमा प्रदान करने के लिए विषमकारी समाज व्यवस्था में अपेक्षित परिवर्तन लाने की बात करती है। मीरा का समूचा साहित्य मूल्यांकन हेतु इसी दृष्टि और मानदंड की कामना करता रहा है।

16.3 मीराकालीन समाज में स्त्री की स्थिति

मध्यकालीन भारतीय समाज सामंती मूल्यों को प्रश्रय देता था। परंपरा और शास्त्र, धर्म और संस्कृति उसे समाज को देखने का नजरिया प्रदान करते थे। जो शास्त्रानुमादित है, परंपरा से चला आ रहा है, धर्मसम्मत है, उसकी वैधता और प्रासंगिकता पर प्रश्नचिन्ह लगाए बगैर ज्यों का त्यों स्वीकार कर लेना मध्ययुगीन भावबोध है जहाँ तर्क की अपेक्षा आस्था, व्यक्ति की अपेक्षा व्यवस्था और लोक की अपेक्षा परलोक महत्वपूर्ण होते हैं। यह भावबोध समय के साथ आगे नहीं बढ़ता, अपनी वर्तुलाकार परिधि में बँध कर वहीं-वहीं गतिशील रहता है। इसलिए जड़ता और विघटन अवश्य भावी हैं, लेकिन मध्ययुगीन संकुचित दृष्टि के पास जड़ता और विघटन को समझने का बोध नहीं वरन् वह इसे परंपरा का पोषण समझ कर गले लगाती है। यही कारण है कि समानता, उदारता और सांस्कृतिक गौरव का डंका पीटने वाला मध्ययुगीन भावबोध, स्त्री एवं दलित का शोषण-दमन करने वाली व्यवस्था के स्वरूप को विश्लेषित और परिवर्तित करने की जरूरत नहीं समझता। मध्ययुगीन भावबोध पूर्वनिर्मित व्यवस्थाओं – वर्ण व्यवस्था और पितृसत्तात्मक व्यवस्था – को अपनी विरासत और आधारभूमि मान कर चलता है। इस पर प्रश्नचिन्ह लगाने का अर्थ है – स्वयं को निराधार और निःशेष करना। अतः स्त्री की प्रशस्ति और

तिरस्कार, समानता का स्वप्न और निजी वर्चस्व की प्रतिष्ठा मध्ययुगीन समाज में साथ-साथ चलते हैं।

सामंती मूल्यों की जकड़न में जकड़ा मीराकालीन समाज ठहरा हुआ है। यह स्त्री को मनुष्य की गरिमा नहीं देता। उसके लिए स्त्री मात्र देह है जिसका उपयोग करने की विधियाँ अनेक हैं। विवाह के माध्यम से संतानोत्पत्ति अर्थात् वंशवृद्धि करना; परिवार के माध्यम से अपनी रोजमर्रा की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दासी जुटाना; परकीया प्रेम अथवा वेश्या के माध्यम से अपनी भ्रमर वृत्ति की संतुष्टि करना आदि। स्त्री-जीवन की सार्थकता पुरुष-सापेक्ष भूमिकाओं के सफल निर्वहण में है। अतः उसके लिए न शिक्षा की आवश्यकता अनुभव की गई, न चारदीवारी से बाहर की दुनिया के साथ परिचय की जरूरत। इस स्त्री को न सम्पत्ति दी गई, न किसी भी किस्म का निर्णय लेने का अधिकार। वह विभिन्न भूमिकाओं का निर्वहण करने वाली कठपुतली मात्र थी जिसकी निजी पहचान छुपाने के लिए पर्दा प्रथा जैसी कुरीतियों की जड़ें गहरी की गईं। पिता, पति और पुत्र के अंकुश तले जीवन जीने को स्त्री-धर्म घोषित किया गया। इस स्त्री के लिए पति को परमेश्वर के समतुल्य बना कर समर्पण और दैन्य को पत्नीत्व की कसौटी माना गया। पतिविहीन स्त्री की परिकल्पना दो रूपों में की गई – खूँटे से छूटी गाय और वेश्या। इसलिए विधवा स्त्री की मुक्ति की परिकल्पना हेतु सती प्रथा का प्रादुर्भाव हुआ। सती का अभिधार्थ यदि जीते जी पति की चिता के साथ जल जाने की नृशंस परंपरा की ओर संकेत करता है तो व्यंग्यार्थ स्त्री द्वारा अपनी कामनाओं और ऐहिक जरूरतों का निषेध करते-करते शून्य हो जाने की संवेदनहीन सामाजिक मान्यता को रेखांकित करता है। दोनों ही स्थितियाँ स्त्री के स्वस्थ विकास का निषेध करती हैं। उल्लेखनीय है कि मीराकालीन समाज में सती प्रथा को अमानुषिक समझने का विवेक नहीं था, वरन् सती स्त्री को देवी के समतुल्य मान कर पूजा जाता था। कमोबेश सभी भक्त कवि स्त्री के 'सती' रूप की प्रशंसा करते दिखाई देते हैं। सती-महिमा असल में पुरुष-वर्चस्व को बनाए रखने का उपक्रम था जिसके भीतर छिपे कुत्सित यथार्थ को आधुनिक भावबोध ने पहली बार उद्घाटित किया।

मध्ययुगीन सामंती समाज अपनी वासनाओं की पूर्ति हेतु गार्हस्थिक बंधनों से स्वतंत्र पतिहीना स्त्री को वेश्या रूप में चिन्हित कर वेश्या प्रथा को सामाजिक स्वास्थ्य हेतु अनिवार्य मानता आया है। लेकिन साथ ही अपनी दुर्बलता को छुपाने के लिए स्त्री को 'माया' का नाम देकर गरियाता भी रहा है। समूचा भक्ति साहित्य नारी को 'कामिनी' के अतिरिक्त किसी अन्य रूप में देख ही नहीं पाया। 'नारी की झांई परत अंधा होत भुजंग' तथा 'ढोल गंवार शूद्र पशु नारी, सकल ताड़ना के अधिकारी' आदि के माध्यम से की गई स्त्री-प्रताड़ना के मूल में स्त्री के प्रति मध्ययुगीन सामंती समाज के विरोध और भय को एक साथ देखा जा सकता है। स्त्री कामिनी है क्योंकि उसकी सत्ता को 'वस्तु' में तब्दील करने के बाद पुरुष की लम्पटता स्वयं उसके भीतर कामनाओं का ज्वार जगाने लगती है। अपने को निष्कलंक साबित करने के लिए यह समाज स्त्री पर वर्जनाओं के पहरे बैठाता है।

मध्ययुगीन समाज में स्त्री का श्रम अलक्षित ही नहीं, अनुत्पादक भी था। रोटी-कपड़ा-मकान जैसी आधारभूत आवश्यकताओं के लिए वह संरक्षक पुरुष पर आश्रित थी। फलतः उसकी पारिवारिक स्थिति हीन और दोयम दर्जे की ही रही। माँ के रूप में अवश्य उसकी अभ्यर्थना की जाती रही, लेकिन माँ के व्यक्तित्व में नारीत्व नहीं, बल्कि पारिवारिक परंपराओं, मर्यादा और पुरुष-स्वर की गरिमा को बनाए रखने के दबाव अधिक दिखाई देते हैं। ईश्वर और धर्म, स्त्री-जीवन के केन्द्र में रखे गए, किंतु शास्त्रों का ज्ञान, धर्म-मीमांसा और मोक्ष जैसी अवधारणाएँ उसकी पहुँच से बाहर रखी गईं। धर्म के नाम पर वह

कर्मकांडों में उलझा दी गई ताकि तोतारटंत ज्ञान के सहारे ईश्वर और धर्म के समानांतर पति और समाज व्यवस्था के वर्चस्व को बनाए रख सके।

इस प्रकार मीराकालीन समाज स्त्री की स्वतंत्र सत्ता और मनुष्यता का निषेध कर उसे खंडित और वर्जनायुक्त पराधीन प्राणी बनाता है।

16.4 मीरा का स्त्री विमर्श

16.4.1 मीरा के काव्य में पितृसत्तात्मक व्यवस्था के प्रति विद्रोह के स्वर

पितृसत्तात्मक व्यवस्था स्त्री को शक्तिहीन करके पुरुष को बलशाली बनाने का महान उपक्रम है। स्त्री को शक्तिहीन और रिक्त करने की यह प्रक्रिया बेहद सूक्ष्म, जटिल, एवं संश्लिष्ट है। एक ओर उसकी महत्ता के डंके पीट कर उसे शील, शक्ति और सौन्दर्य की अधिष्ठात्री कहा जाता है तो दूसरी ओर कर्त्तव्यपरायणता, एकनिष्ठता, सहिष्णुता, त्याग और क्षमा जैसे उच्चादर्शों में बाँध उसकी परिधि को बेहद संकुचित कर दिया जाता है। स्त्री अपने लिए नहीं जीती। उसे दूसरों के लिए जीना सिखाया जाता है – पुरुष के लिए, पुरुष के परिवार के लिए, पुरुषनिर्मित व्यवस्था के लिए, इसीलिए परिभाषाओं और वर्जनाओं में मात्र उसी की सत्ता को बाँधा जाता है, पुरुष की नहीं। जन्म से स्त्री और पुरुष दोनों संस्कार रूप में इन परिभाषाओं और वर्जनाओं को मूक भाव से स्वीकार करते हैं और उन्हीं के अनुरूप अपनी जीवन-शैली विकसित करते हैं। सामान्यतया कहीं विवाद या संवाद की कोई गुंजाइश नहीं। किंतु मीरा के साथ ऐसा नहीं हुआ। निःसंदेह पितृगृह में उन्होंने भी पितृसत्तात्मक व्यवस्था का शासन और अनुशासन देखा होगा और स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में असमानता की बात उनके रोजमर्रा के जीवन से होकर गुजरी होगी। किंतु अनुभव के स्तर पर शायद अनुशासन और असमानता को उन्होंने न भोगा हो क्योंकि आम राजपूत कन्याओं से भिन्न उनकी शिक्षा-दीक्षा चचेरे भाई जयमल के साथ हुई। अंतःपुर से बाहर निकल कर भाई के संग शिक्षा ग्रहण करने के अधिकार ने मीरा में निश्चय ही एक स्वतंत्रचेता व्यक्तित्व का विकास किया जो विवेक, स्वाभिमान और दृढ़ता के सहारे अपनी मानवीय गरिमा को अक्षुण्ण रखना जानता है। पुरुषों को ये गुण श्रेष्ठ बनाते हैं, स्त्रियों को जिद्दी और अहंकारी। इसलिए पत्नी एवं कुलवधू के रूप में जैसे ही मीरा से पितृसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा पोषित रूढ़ छवियों में बँधने की मांग की गई, स्वप्नद्रष्टा मीरा की स्वतंत्रता की भावना को गहरी ठेस लगी।

किसी भी आत्माभिमानी पुरुष की भाँति मीरा अपने जीवन में किसी के अयाचित हस्तक्षेप को स्वीकार नहीं कर सकती। अपने ढंग से जीना उसकी मजबूरी है। इस जीवन शैली में 'मुँह उघाड़' कर साधुओं की संगति करनी पड़े तो भी। लेकिन मीरा का दुर्भाग्य है कि 'सत्संगति' की मामूली सी इच्छा को भी कोई स्वीकृति नहीं दे रहा है। मीरा चकित है और किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर कहती है–

"राजा बरजै राणी बरजै, बरजै सब परिवारी
कुंवर पाटवी सो भी बरजै और सहेल्यां सारी।"

जिस राणा से विवाह कर मेवाड़ आई, वह भी दुत्कार रहा है –

"राणो जी म्हासूं रूस रह्यौ छै, कूड़ा बचन निकासै हे माय।"

यहाँ तक कि पितृकुल भी उसके संस्कार, शिक्षा-दीक्षा और निर्णय की अवमानना कर उसी को दोषी ठहरा रहा है –

"मेड़तिया रा कागद आया, बाई मीरां ने जा खीज्यो जी
बोहत भांति से लिख्या ओलंभा, कुल कै दाग मत दीज्यो जी।।
साधां को संग परो निवारो... पति आज्ञा में रीज्यो जी।।"

मीरा बताना चाहती है कि हरि भक्ति में लजाने जैसा कुछ भी नहीं। इससे तो उसके पितृकुल और श्वसुर कुल दोनों का ही उद्धार होगा – 'एक कुल त्यारां राणा आपणो, दूजो बंस राठौड़। तीजो त्यारां जी राणा मेड़तो, चौथौ गढ़ चित्तौड़।"

ननद ऊदांबाई "साधां की संगत दुख भारी" कह कर जिस अभावग्रस्त जिंदगी की ओर संकेत करना चाहती है, उसे तो मीरा मुक्ति का मार्ग समझती है। मीरा परिवार से संवाद बनाए रखने की हर संभव कोशिश करती है लेकिन साधु-संगति के प्रलोभन से स्वयं को मुक्त नहीं कर सकती –

"यो मन लाग्यो वैराग से, रमस्या साधां री लार,
संतां री लार, भक्ति न छूटै हरि नाम की।"

इसके लिए अपने लौकिक अधिकारों एवं भौतिक सुखों का परित्याग करना पड़े तो ज़रा भी संकोच नहीं करती –

"बाई ऊदां छोड्यो मैं मोत्यां को हार, गहणो तो पहर्‌यो सील संतोष को
बाई ऊदां चढ़ चौबारा झांक, साधां की मंडली लागे सुहावणी।"

'भाभी सब महलां में थारो सीर' – ऊदां मीरा को प्रलोभन देना चाहती है लेकिन मीरा अडिग है – "राजपाट भोगो तुम्हीं, हमें न तासूं काम।" वह राणा तक अपना निर्णय पहुँचा देना चाहती है –

"मेरी बात नहीं जग छानी, ऊदांबाई समझो सुघर सयानी
साधू मात पिता कुल मेरे, सजन सनेही ज्ञानी
संत चरन की सरन रैन दिन, सत्त कहत हूं बानी
राणा नैं समझावो जावो, मैं तो बात न मानी।"

चारित्रिक दृढ़ता, ईमानदारी और पारदर्शिता मीरा की पहचान है और उसकी मानवीय रक्षा का प्रमुख घटक भी। मीरा ने छल या विश्वासघात नहीं किया तो लोकापवाद क्यों? वह नहीं समझ सकती कि 'संतन के ढिंग' बैठने से और हरिभक्ति में भावविभोर होकर नाचने से कुल की मर्यादा का हनन कैसे हो सकता है? मीरा पितृसत्तात्मक व्यवस्था के जड़ कठोर नियमों को नहीं समझ सकती और स्वयं किसी तर्क द्वारा अपनी हार्दिकता और निश्छलता उस तक प्रेषित नहीं कर सकती। व्यवस्था और व्यक्ति के बीच संवाद संभव ही नहीं। इसलिए ससुराल-पक्ष के साथ सम्बन्धों में घुटन और दरकन है–

"सास बुरी म्हारी ननद हठीली/जलबल होय जाय अंगीठी।"

और

"राणा जी थे क्याने राखों मोंसू बैर
राणा जी म्हांने ऐसा लगत है ज्यूं बिरछन में कैर।"

या

"राणा जी का देस में कोई, जल पीबा को दोस।"

उत्पीड़न का संत्रास झेलते हुए भी वह अपनी जीवन-शैली बदल नहीं सकती। अतः अपने ही द्वंद्वों में वह अनिश्चित सी घिरी खड़ी है –

"हेली म्हांसूं हरि बिन रह्यो न जाय।
सासु लड़ै मोरी ननद खिजावै, राणां रह्यो रिसाय।।
पहरो भी राख्यो, चोकी भी बिठाइयो, ताला दिया जुड़ाय।।
पूर्वजनम की प्रीत पुरानी सो क्यों छोड़ी जाय।।"

मीरा सम्बन्धों की संरचना में परिवर्तन चाहती है, सम्बन्धों से मुक्ति नहीं। उसकी मानसिक संरचना के ताने-बाने में पितृसत्तात्मक व्यवस्था की रूढ़ छवियों के साथ स्वप्नशील व्यक्ति की सघन संवेदनशीलता और आत्मसम्मान की मानवीय आकांक्षा भी है। एक औसत स्त्री की तरह मीरा सरलहृदया है, किंतु औसत स्त्री से भिन्न ज्ञानपिपासु भी। सत्संगति के महत्व की जो सैद्धांतिक बातें वह पोथियों में पढ़ती आई हैं, उन्हें जीवन में उतार कर जीवन सफल बना लेना चाहती है। साधु संगति, मीरा के लिए ज्ञानार्जन और आत्मविस्तार का जरिया है – भौतिक जगत के रहस्यों को जानने, जगत के साथ अपने सम्बन्धों को गुनने और अपनी मानवीय सत्ता को एक सार्थक दिशा देने का। मीरा के अनुभव सीमित हैं – अपने ही वृत्त में बंद स्त्री जीवन की नियति के कारण। अतः वह आरोपित स्त्री नियति से ऊपर उठ कर 'अपने' को तलाशना और सँवारना चाहती है। उल्लेखनीय है कि इस तलाश में परिवार और सम्बन्धों का निषेध नहीं है, बल्कि उनके अर्थ और अंतरंगता का विस्तार है –

"माई म्हारै साधां रो इक्तयार है
साधु ही पीहर साधु ही सासरो, सांवरिया भरतार है
जात पांत कुल कुटम कबीलो, साधू ही परवार है
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, रमस्यां साधां री लार है।"

'भाग खुल गए म्हारे साध संगत सूं' – अपनी सीमाओं का अतिक्रमण करने की विकलता मीरा को निर्भीक और विद्रोहिणी बनाती है –

"बरजी मैं काहू की नाहिं रहूं . .
साध संगति करि हरि सुख ले, जगसूं मैं दूरी रहूं
तन धन मेरो सब ही जावो, भल मेरो सीस लहूं
मन मेरो लागो सुमिरन सेती, सबको मैं बोल सहूं।"

"सबको मैं बोल सहूं" कहने वाली नतशिर संयमी मीरा 'म्हांने बोल्यां मत मारो जी राणां, यो लै थारो देस" कह कर राजसत्ता, पितृसत्ता, कुलकानि को ठोकर मारती विद्रोहिणी अनायास नहीं बनी है। तिरस्कार से अधिक दमन और उत्पीड़न ने उसके भीतर की कोमलता और मनुष्यता को आहत किया है। 'गहरो लाग्यो है घाव' – अपनी असुरक्षा से अधिक वे व्यक्ति के भीतर की अमानुषिकता को देख थर्रा गई हैं। वे स्तंभित हैं –

"सीसोद्या राणां प्यालो म्हांने क्यूं रे पठायो
भली बुरी तो मैं नहिं कीन्हीं, क्यूं है रिसायो
. . . कनक कटोरे ले विष घोल्यो, दयाराम पंडो लायो"

अवाक् भी –

"कोप कियो राणाजी जब ही, सांप गला में डार्‌यौ"

और अपमानित भी –

''राणूं मन में कोपियो जी, मारो याके सेल। मार्‌यां तो पिराछित लागै जी, पीहर दो याकों मेल।।

रथड़ां बहल जुपाइया जी, ऊँटां कसिया भार। डावो छोड़ो मेड़तो जी, पेलां पोषर जाय।।

राणां साड्‌यां मोकल्या जी, पाछा ल्यावो मोड़। कुल की मांडण इस्तरी, मुरड़ चली राठोड़।।''

अब मीरा के पास दो ही विकल्प हैं – रो-रो कर प्राण दे दे या सजग-चौकन्नी होकर अपने प्राण और स्वाभिमान की रक्षा करे। सर्पदंश को पुष्पहार और विष को अमृत बना लेने का जीवट सामान्यतया स्त्रियों के पास नहीं होता, मीरा के पास है। एक नहीं, कई अहम फैसलों के रूप में। सबसे पहले आत्मसाक्षात्कार कि क्या खरा-खोटा सब डंके की चोट पर कह देने की निर्भीकता उसमें है? मीरा यहाँ जरा भी संशयग्रस्त नहीं –

''जो कोउ मोको एक कहोगो, एक की लाख कहोंगी''

फिर विश्लेषण! जो व्यक्ति सम्बन्ध की गरिमा का निर्वाह न कर पाए, क्या उससे सम्बन्ध बनाया और निभाया जाना चाहिए? मीरा क्षणिक आवेश में नहीं, धीरज के साथ गुन-बुन कर दाम्पत्य सम्बन्ध को नकारती हैं –

''राणांजी हूं तो गिरधर कै मन भाई।
जैमल के घरि जनम लियो है, राणा नैं परणाई।
सांचा सनेही म्हारै रामसंतजन, जासूं प्रीति लगाई। ....
जौ पकड़ोगा हाथ हमारो, खबरदार मन माहीं
सांचा मनसूं सराप ज द्यूंली, बलि'र भसम होइ जाई
जनम जनम की मैं दासी राम की, थारी नाहिं लुगाई।''

इतना ही महत्वपूर्ण है दूसरा सवाल कि जिससे सम्बन्ध त्याग दिया है, क्या उसके भौतिक-सामाजिक संरक्षण में रहना चाहिए? आत्माभिमान से दिपदिपाती मीरा किसी भी आधुनिक विद्रोहिणी से कमतर नहीं। 'खीर खांड', 'दिखणी चीर' और 'माणक मोती' का परित्याग तो मीरा ने कब से कर रखा है, फिर दो मुट्ठी अन्न के लिए राणा की क्या धौंस –

''हो जी सीसोद्या राणा, मनड़ो बैरागी धन रो क्या करूँ।''

जब राह अलग है ('मान अपमान दोउ धर पटके, निकली हूं ज्ञान गलीं) और जीवन शैली भी (पग घुंघरू बांध मीरा नाचत री/ पगा बजावत घूंघरा जी, हाथ बजावत ताल) तो राणा की सत्ता की क्या परवाह – ''तुम जावो राणा घर आपणे, मेरी तेरी नाहिं सरी''।

दरअसल जब मीरा यह कहती है कि 'अपने घर का परदा कर लौं, मैं अबला बौरानी' तब दो चीजों को एक साथ परिलक्षित किया जा सकता है। एक, हताशा के गर्भ से फूटता स्त्री का विद्रोह और दूसरे, स्त्री के 'मनुष्यत्व' की रक्षा के लिए पितृसत्तात्मक व्यवस्था के स्वरूप की पुनर्संरचना। मीरा का विद्रोह उन स्थितियों की पड़ताल करने की नैतिक जवाबदेही है जो 'अबला' कही जाने वाली निरीह पराश्रित स्त्री को 'बौराने' और 'आक्रामक' होने को विवश करती हैं; बार-बार उन पूर्वाग्रहों और जड़ताओं को चीन्ह लेने की आकांक्षा करता है जो स्त्री की आत्मविकास की नैसर्गिक आकांक्षा को 'लोकलाज' और 'कुलकानि' के उल्लंघन से जोड़ता है – उस कुत्सित मानसिकता को तुरंत निषिद्ध कर देने की मांग करता है जो पुरुष और व्यवस्था की हर अमानुषिकता को अनुशासन और नियम-पालन का पर्याय बना देती है।

मीरा का काव्य विद्रोहिणी स्त्री पर लगाए गए इन आरोपों का जवाब है कि वह स्वतंत्रता की आड़ में सम्बन्ध-व्यवस्था से मुक्त हो उच्छृंखल जीवन जीना चाहती है। बेशक बेहद मुखर हो मीरा स्वीकार करती है कि 'मोहे या बदनामी लागै मीठी.. कोई निंदै कोई बिंदै, मैं चाल चलूंगी अपूठी'' लेकिन विद्रोह के हर बढ़ते कदम के साथ वह मानवीय सम्बन्धों के मानवीय, अंतरंग और सकारात्मक स्वरूप को स्वीकृति देती गई है। बेशक मीरा मनुष्य के रूप में अपनी गरिमा और आत्मसम्मान बनाए रखना चाहती है, लेकिन 'स्त्रीत्व' को अस्वीकार भी नहीं करती। विवाह और परिवार संस्था के नकार की बात वह सोचती भी नहीं। हाँ, उसके स्वरूप को पुनर्संस्कारित करना चाहती है जहाँ पति राणा जैसा क्रूर आत्मकेन्द्रित स्वार्थी पुरुष नहीं, कृष्ण जैसा संवेदनशील पुरुष है। राणा के विरोध के मूल में भारतीय पति की परम्परागत क्रूर भूमिका का अस्वीकार है –

''राणांजी हूं अब न रहूंगी तोरी हटकी।
साध-संग माहि प्यारा लागै, जाल गई घूंघट की।...
हार सिंगार सभी ल्यो अपना, चूड़ी कर की पटकी।
मेरा सुहाग अब मोकूं दरसा, और न जाने घट की।
महल किला राणां मोहिं न चाहिए, सारी रेशम पट की।
हुई दीवानी मीरां डोलै, केस लटा सब छिटकी।''

16.5 मीरा की कविता में स्त्री सशक्तीकरण के स्वर

16.5.1 'स्व' की पड़ताल और दैहिकता का अकुंठ स्वीकार

मीरा का समूचा काव्य उत्पीड़ित स्त्री के आर्त्तनाद और विरहिणी प्रिया के करुण हाहाकार का प्रामाणिक दस्तावेज है। निजी जीवन की अनुभूतियाँ और गोपन मन की रहस्यात्मकता जिस सूक्ष्म भाव से मीरा-काव्य में व्यंजित हुई है, वह उसे अन्य भक्त कवियों से अलगाता है। मीरा के पद अपनी मूल संरचना में उत्कृष्ट भावोच्छ्वास में लिखी गई डायरी की प्रविष्टियाँ हैं जहाँ न अपने को बेहतर रूप में प्रस्तुत करने की सामाजिकता है, न विकारों को छुपाने की व्यावहारिकता। केवल अपनी भौतिक सच्चाई को अकुंठ निर्भीक भाव से स्वीकारने की ईमानदारी ही दिखाई देती है। मीरा के सरोकार किसी स्त्रीविमर्शकार की तरह सजग-सचेतन रूप से न स्त्री जाति के कल्याण से जुड़े हैं, न पितृसत्तात्मक व्यवस्था के पुनरीक्षण की मांग से। अपने से बाहर 'मनुष्य' की सत्ता को जानने का बोध मध्ययुगीन व्यवस्था में विकसित हुआ ही नहीं था। निर्गुण संत कवियों की बानी में गूँजने वाला सकारात्मक विद्रोही स्वर दरअसल वैयक्तिक स्तर पर अपनी पीड़ा और दमित आकांक्षाओं की मुखर एवं सामूहिक अभिव्यक्ति रही है। मीरा-काव्य में स्त्री मुक्ति के स्वर भी अपनी वैयक्तिकता की अभिव्यक्ति की उत्कृष्ट इच्छा का परिणाम हैं।

कृत्रिमता एवं छद्म छल-छंद से सर्वथा मुक्त मीरा स्त्री-मानस को उसकी उद्दाम कामनाओं के साथ चित्रित करती हैं। इस प्रक्रिया में लौकिक मर्यादाएँ और वर्जनाएँ बार-बार टूटने की कगार पर आती हैं, टूट भी जाती हैं। अनेक बार मीरा अपने भीतर की प्रचंडता से आतंकित हो पुनः अपनी सुरक्षित चारदीवारी में बँध जाना चाहती है किंतु चारदीवारी के भीतर पलती नृशंसताओं एवं असुरक्षा को वह पहले ही प्राणों के मोल पर झेल चुकी है, अतः प्रत्यावर्तन का विकल्प भी नहीं। तब उसके सामने एक ही विकल्प है – युगीन प्रवाह में बह कर लौकिक पर आध्यात्मिक का आरोपण। यह विकल्प एक ओर यदि मीरा के भीतर की स्त्री की द्वंद्वग्रस्तता, निरीहता एवं विवशता का संकेतक है तो दूसरी ओर अपनी दैहिक कामनाओं को पूरी ऐन्द्रिकता के साथ प्रकट करती एक नई स्त्री-छवि को सम्पुष्ट भी करता है। ''अपणा गिरधर कै कारणै मीरा वैरागण हो गई रे'' – मीरा की यह

आरोपित भक्त-छवि विकल प्रेयसी के रूप में मीरा के अध्यात्म की प्रक्रिया को बाधित करती है किंतु जोगी के लिए 'सरप डसी' मीरा की टेरती टीस क्या अनसुनी की जा सकती है? इस जोगी की 'माधुरी मूरत सुंदरी सूरत' 'नैनन' में बसने वाले नंदलाल से भिन्न है। इस जोगी के अधरों पर न मुरली है, न 'उर' पर वैजयंती माल; न कटितट पर क्षुद्र घंटिका सुशोभित हैं, न नूपुर शब्द का मधुर रस, बल्कि यह 'जोगी' राजस्थानी वेशभूषा में घर-घर अलख लगाता संन्यासी भर है –

"कुसुमल पाग केसरियां जामा, ऊपर फूल हजारी
मुकुट ऊपरे छत्रा बिराजे, कुंडल की छबि न्यारी।"

इस जोगी के संग वैवाहिक जीवन से अतृप्त स्त्री का मन जुड़ जाए तो अन्यथा क्या। पति से उसकी सामान्य अपेक्षाएँ ही तो रहीं। वह कृपा-दृष्टि नहीं, प्रेम-दृष्टि चाहती है। पति की 'रिसाई' दृष्टि में कोप है जहाँ अपने को दग्ध होने से बचाने की सतर्कता है लेकिन जोगी की दृष्टि 'मानो प्रेम की कटारी है' जहाँ बिंध-बिंध कर अपने को सम्पूर्णता में चीन्ह लेने की खुमारी है। पति के 'कूड़ा बचन' उसके स्त्रीत्व की लानत-मलामत करते हैं, तो जोगी की मीठी बातें दिल और देह की तार-तार झंकृत कर उसके भीतर यौवन की दहकती कामनाएँ उत्पन्न कर देती हैं। दाम्पत्य एवं देह मिलन के संदर्भ नए अर्थों में उसके समक्ष खुलते हैं तो वह अपने पत्नीत्व की सार्थक परिणति में आह्लाद से भर कर सेज सजाने की सभी तैयारियाँ पूर्ण कर लेना चाहती है –

"अतर सुगंध मिलायके जी, घी भर दिवला बार
जाई जूही केतकी जी, चंपाकली सुधार
पलकां सूं करां पांवड़ा जी, अंचलां सूं मग झार।
गिरधर म्हारो परम सनेही, मीरां उनकी नार।"

'आद अंत तन मन धन मेरे, आनंद करां कलोले' – रोम-रोम में संचारित कामनाओं का उत्ताप उसे विह्वल बना देता है –

"करके सिंगार पलंग पर बैठी, रोम रोम रस भीना
चोली के मेरे बंद तरक गए, श्याम भए परबीना।"

प्रेम-दीवानी मीरा अपनी मनोभावनाओं को किसी से छुपाना भी नहीं चाहती –

"ज्यूं अमली से अमल अघारा, यूं रमैया प्राण हमारा
कोई निंदै बंदै दुख पावै, मोकूं तो रमैयां भावै।"

कामनाएँ मानस में रस का उद्रेक भले ही कर दें, बौराई देह को तृप्त नहीं करतीं। काल्पनिक सुख मीरा को दांपत्य जीवन की कटुता से पल भर को मुक्त करा सकता है, शारीरिक उत्ताप को शीतल नहीं कर सकता। 'कबहुं मिलैगो मोहिं आई रे तू जोगिया. मिलि का तपत बुझाई" – मीरा अपनी कामनाओं का अकुंठ स्वीकार करती है और अतृप्ति की पीड़ा का भी – "नींद नहिं आवै जी सारी रात। करवट लेकर सेज टटोलूं रूं पिया नहीं मेरे साथ" तथा "सूनी सेज जहर ज्यूं लागे, सिसक-सिसक जिय जावे निद्रा नहिं आवे।" लेकिन लौकिक जीवन का यथार्थ मीरा को पुनः एकाकी और पराजित कर देता है। "मैं तो जाणूं जोगी संग चलेगा" – बारह वर्ष के सान्निध्य को धता बता कर अन्यत्र चले जाने वाला जोगी क्या विश्वासघाती नहीं? मीरा 'जोगी' के इस पुरुष-चरित्र को खूब पहचानती है लेकिन प्रेमजन्य विश्वास और संवाद के कारण हार्दिकता के तंतुओं को इतनी जल्दी झटकना नहीं चाहती। विकल्पों और संभावनाओं के महल खड़े कर अपने

छिलते वजूद को आधार देना चाहती है। उसे आशा है कि शायद भगवा भेष धारण कर के जोगी मिल जाए उसे –

"जोगिया ने कहियो रे आदेस।
आऊँगी मैं, नांहि रहूंगी कर जोगन को भेस।
चीर को फाडूं कंथा पहरूं, लेऊँगी उपदेस।
गिणत गिणत घिस गई रे मेरी उंगलियां की रेख।
मुद्रा माला भेष लूं रे, खप्पड़ लेऊँ हाथ।
जोगिन होय जग ढूंढसूं रे, रावलिया के साथ।"

या प्रेम पगे उलाहने में अपने 'त्याग' की कातरता पिरोने से पिघल जाए वह –

"इतनूं काई छैं मिजाज, म्हारै मिंदर आता, थांने इतनूं काई छैं मिजाज।
तन मन धन सब अरपन कीनूं, छाड़ी छै कुल की लाज
दो कुल त्याग भई बैरागण, आप मिलण की लागं।"

या शायद पूर्ण समर्पण से उसका अहं तुष्ट हो जाए –

"जोगी आ जा आ जा, जोगी पाई परूं मैं हौं चेरी तेरी।"

इस स्त्री का एकमात्र जीवन-सत्य है – 'रमइया बिन रह्यो ही न जाई।' मीरा के पदों को यदि आध्यात्मिकता के कुहासे से मुक्त किया जाए तो वे जीवन के राग, उल्लास, उत्सव और ठाठ-बाट के साथ ऐन्द्रिकता के उद्दाम का भी संस्पर्श करते हैं। घनघोर लौकिकता के बीच घोर श्रृंगारिक बाना। मनोवृत्तियों का प्रकाशन भी ठीक नैसर्गिक रूप में है – व्यंग्य, आवेश, आक्रोश, पीड़ा, हठ, अहंकार। मीरा अपनी इच्छाओं के उच्छ्ल आवेग को जानती है, उन्हें पूरा करने की विधि नहीं जानती। यह उसका 'दरद' है क्योंकि लौकिक प्रिय के लौकिक स्वरूप को समाज स्वीकृति नहीं दे सकता। मीरा के पद प्रेमाकुल मीरा के जीवनोल्लास, मोहभंग और समर्पण के तीन महत्वपूर्ण बिंदुओं के जरिए व्यवस्था के समक्ष स्त्री की असफल संघर्ष-यात्रा का आरेखन करते हैं। मीरा लौकिक प्रिय (जोगी) से नहीं मिल सकती। अपनी संस्कारग्रस्तता (जिसे स्त्री के शील और संकोच के रूप में महिमामंडित किया जाता है), प्रिय की कायरता (जो पुरुष की भ्रमरवृत्ति के रूप में उसके पौरुष का श्रृंगार कही जाती है, किंतु स्त्री की दृष्टि में यह उसकी लम्पटता है) अथवा पारिवारिक नियंत्रण के कारण यह प्रेम सिरे नहीं चढ़ता। मीरा शील और संकोच को अंगूठा दिखा कर अपनी कामनाओं को अभिव्यक्त कर चुकी है। परिवार के अंकुश बेमानी हैं। रमते जोगी से संवाद और 'दरस' पाने के लिए साधु-संगति शुरू कर दी है – "गिरधर गास्यां सती न होस्यां, मन मोह्यो घण नामी। जेठ बहू को नहिं राणाजी, थे सेवक म्हे स्वामी।'

इस प्रेम-प्रवंचिता ने घर खोया है, अंतरंग सम्बन्ध की हार्दिकता के प्रति विश्वास को खोया है, यथार्थ जगत की विभीषिका के साथ-साथ पग-पग पर अपनी (स्त्री जाति की) सीमाबद्धता का साक्षात्कार किया है। घर-बाहर लीक से हट कर कुछ करने को स्वतंत्र नहीं। वर्तुलाकार परिधि में इन्द्रियों को नकार कर जीने वाली जीवन यात्रा – यही है कुल स्त्री जीवन। मीरा की स्त्री फैल-फूट कर अपना वजूद पाना चाहती है। मीरा के भीतर जीवन ठाठें मार रहा है। वह अपने को बचाना चाहती है। इसलिए प्रेम पर भक्ति का आरोपण कर प्रिय की स्मृतियों के साथ अपने अनुभव संसार – प्रीत – को अमर कर देना चाहती है –

"जोगिया सों प्रीत कियां दुख होय।
प्रीत कियां सुख नहिं मोरी सजनी, जोगी मीत न कोई।।
रात दिवस कल नाहिं परत है, तुम मिलियां बिन मोई।।

ऐसी सूरत या जग माहीं, फेरि न देखी सोई...
मिलिया आनंद होई।"

अब जोगी गिरधर है और मीरा गोपिका। प्रेम पर दार्शनिकता के आवरण का खेल मजे से चल सकता है–

"आज्यो आज्यो गोविंदा म्हारै म्हैल/ निहारां थारी बाटड़ली खड़ी जी
साधु हमारी आतमा जी, हम साधुन की देह
रोम रोम में रम रही जी, ज्यूं बादल में मेह/सुरत हरि नाम से लागी जी।"

तथा

"आवो आवो जी रंगभीना म्हारै म्हैल, प्यालो तो लियां हाजर खड़ी।
सतजुग में सूती रही, त्रेता लई जगाय।
द्वापर में समझी नहीं, कलजुग पोंहच्यो आय।
सतगुरु शब्द उचारिया जी, बिनती करों सुनाय।
मीरां नैं गिरधर मिल्या जी, निरभै मंगल गाय।"

मीरा के विरह पदों में मूर्त का अमूर्तीकरण व्यवस्था के प्रति मीरा के निरुपाय समर्थन की दमघोंटू व्यथा है। यही कारण है कि मीरा के इन तथाकथित भक्ति पदों की उत्कृष्टता, हार्दिकता एवं भास्वरता क्षीणतर होते-होते भक्ति के लयबद्ध सुमिरन में घुट कर रह गई है। भक्ति के आरोपण के कारण मीरा अपनी ही कही बात उलटाने को विवश हुई है। जोगी को ढूँढ़ने के लिए मीरा को 'चारुँ देस में' घर-घर अलख जगाना पड़ा है। संभवतया तीर्थाटन जैसे स्त्री-निषिद्ध कर्म में लीन होने की तत्परता के पीछे संकल्पदृढ़ प्रेम विरहिणी स्त्री की प्रिय (शरीरी पुरुष) अथवा स्वप्न पुरुष (अशरीरी) को पाने की क्षीण आकांक्षा रही हो, किंतु अब जब से प्रिय गिरधर या सांवरिया हो गया है, निर्गुण संत कवियों की तरह वह उसके हृदय में बसने लगा है –

"जिनके पिया परदेस बसत हैं, लिख लिख भेजैं पाती।
मेरे पिया मेरे मांहि बसत हैं, कहूं न आती जाती।"

संभवतया यह वही अवस्था है जब मीरा वृंदावन-काशी आदि में घूमने, साधु-संतों की संगति करने के उपरांत स्थायी तौर पर द्वारिका में बसी थीं – द्वारिका जो जीवन-राग से आपूरित रसिया कृष्ण की नहीं, रणछोड़ कृष्ण की नगरी है। तो क्या रणछोड़ की शरण में आना मीरा द्वारा अपने 'रण' को छोड़ने का सार्वजनिक ऐलान है? क्या यह समर्पण और विश्रांति की अवस्था है जहाँ जीवन की निस्सारता और अपने संघर्ष की व्यर्थता देख कर मृत्यु की प्रतीक्षा जीवन का अंतिम विकल्प बनती है?

16.5.2 दाम्पत्य सम्बन्ध में समानता की कामना और स्वप्न-पुरुष की तलाश

मीरा के भीतर की नारी वैषम्य एवं दमन पर आश्रित विवाह संस्था की जड़ता के कारण आहत है। प्रेम उसे परिपूर्णता नहीं दे पाता क्योंकि लोकापवाद का भय स्त्री के लिए सारे दरवाजे बंद रखता है। मीरा सहअस्तित्वपरक समाज की परिकल्पना करना चाहती है, लेकिन उसकी 'बात' समझने के लिए उसकी 'भाषा' और 'विचार' से कोई साझा तक नहीं करना चाहता। वह अकेली है लेकिन पराजित नहीं। स्वप्न-पुरुष की तलाश में बेशक असफल रही है, किंतु स्त्री की दृष्टि से स्वप्न-पुरुष की आधारभूत विशिष्टताओं को गिनाना नहीं भूलती। वह सबसे पहले स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में परस्पर समानता, सद्भाव और

हार्दिकता की मांग करती है जहाँ किसी एक का व्यक्तित्व दूसरे का विलयन न करे, बल्कि साथ-साथ विकास और परिष्कार की संभावनाओं को फलीभूत करे। ऐसी अवस्था में कोई एक श्रेष्ठ और दूसरा हीन, कोई एक उपास्य और दूसरा उपासक नहीं होगा बल्कि एक-दूसरे से निरपेक्ष अपने आप में पूर्ण होंगे। पितृसत्तात्मक व्यवस्था स्त्री के पुरुष निरपेक्ष रूप पर विचार करने की स्वतंत्रता ही नहीं देती। मीरा इस व्यवस्था का अतिक्रमण करने के लिए स्वप्न-लोक रचती है जहाँ की सामाजिकता विवाह-सूत्र में बँधी स्त्री के समक्ष न पातिव्रत्य की कठोर एकांगी साधना का आदर्श प्रस्तुत करती है, न वैधव्य का अभिशाप। मीरा आरोपित विवाह सम्बन्ध को अस्वीकार कर स्त्री द्वारा स्वयं पति रूप में पुरुष का वरण करने की स्वतंत्रता की पक्षधर है। वह चाहती है कि सम्बन्ध न आनन फानन में तय हों, न बाहरी दबाव से। ठगे जाने की प्रतीति ही न रहे, इसलिए ठोक बजा कर साथी ढूँढ़ने का अवसर और अधिकार पाना चाहती है मीरा –

''माई मैं तो लियो है सांवरिया मोल।
कोई कहै सोंधो कोई कहै महंगौ, मैं तो लियो है हीरा सूं तोल।
कोई कहै हलको कोई कहै भारी, मैं तो लियो री ताखड़ियां तोल।
कोई कहै छाने कोई कहै वोड़े, मैं तो लियो री बाजतां ढोल।
कोई कहै घटतो कोई कहै बढ़तो, मैं तो लियो है बराबर तोल।
कोई कहै कालो कोई कहै गोरो, मैं तो देख्यो है घूंघट पट खोल।''

यहाँ न नारीसुलभ लज्जा की स्वीकृति है (मैं तो देख्यो है घूंघट के पट खोल), न अज्ञानी और अव्यावहारिक स्त्री की स्तुति (मैं तो लियो है बराबर तोल)। मीरा की पूर्ण-पुरुष की प्रत्याशा वस्तुतः विवाह संस्था की जड़ताओं का नकार है। यह एक ऐसे समन्वित स्त्रीवाद का स्वप्न है जहाँ स्त्री 'मनुष्य' है – पत्नी, परित्यक्ता, विधवा या वेश्या नहीं और पुरुष भी 'मनुष्य' है, पति और रसिया नहीं। यह वही समन्वित स्त्रीवाद है जो मिथकों में अर्धनारीश्वर की परिकल्पना के जरिए उभर कर आता है।

मीरा का स्वप्न-पुरुष रसिया कृष्ण के रूपक में उपस्थित होकर दाम्पत्येतर प्रेम का पैरोकार भी है। प्रेम को समय व समाज की संकुलता से मुक्त कर वह दिक्काल से जोड़ता है जहाँ 'स्व' से 'समाज' और 'आनंद' से 'आत्मोपलब्धि' की बीहड़ अंतर्यात्राएँ हैं। पूर्वजन्म की गोपिका के रूप में रसिया कृष्ण के संग चीरहरण सरीखी लीला का आनंद उठाने की कसमसाहट मीरा के पदों में एकाधिक बार व्यक्त हुई है। दरअसल यह आकांक्षा वर्जनाहीन प्रेम सम्बन्ध को छक कर जीने की मानवीय कामना है जो स्त्री के लिए निषिद्ध है। मीरा निषिद्ध को अपना अधिकार मानना चाहती है किंतु साथ ही जानती है कि उसकी स्त्री मुक्ति की अवधारणा 'स्वप्न-पुरुष' की विवेकशील अवधारणा के बिना संभव नहीं। क्या इस 'स्वप्न-पुरुष' को वह जीवन में पा सकेगी? नहीं, 'अड़सठ तीरथों' का भ्रमण करके और 'वृंदावन कासी' की खाक छान कर भी उसकी उपलब्धि शून्य है – ''वै न मिले जिनकी हम दासी।'' मीरा को कहीं विश्वास था कि साधुओं की नगरी वृंदावन-काशी में शायद उसे मनवांछित पुरुष मिल जाए लेकिन वहाँ या तो सभी ब्राह्मण-बनिए (क्षुद्र लौकिकताओं में लीन आत्मकामी पुरुष) थे या संन्यासी (आध्यात्मिक आनंद की तलाश में भटकते वीतरागी पुरुष)। इनमें भी मनुष्यत्व का नाम नहीं। अमूमन सभी 'बगल में छुरी, मुंह में राम राम' के बिंब को साकार करते हुए विश्वासघाती। इसलिए मीरा भौतिक जगत में स्वप्न-पुरुष की तलाश छोड़ कर रसिया कृष्ण की अमूर्त छवि में ही अपनी आशाओं, आकांक्षाओं और सपनों को केन्द्रित करने लगती है। उसका स्वप्न-पुरुष समानता, स्वतंत्रता, बंधुत्व और राग का प्रसार करता एक अमूर्त विचार है जिसकी ठोस लौकिक उपस्थिति हर काल के स्त्री विमर्श का वरेण्य बिंदु है।

16.5.3 आत्मप्रसार की कामना और स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता

मीरा परमुखापेक्षी स्त्री का मिथक तोड़ कर स्वतंत्र निर्णय लेती नई स्त्री छवि को गढ़ती है। जब जीवन मीरा का है तो उसे परिचालित करने के लिए दूसरे को निर्णय लेने का क्या अधिकार? घर की बंद व्यवस्था के समानांतर मीरा ने साधुओं की सत्संगति में ज्ञान के गवाक्ष खुलते देखे हैं। देशाटन कर लौटे संतों के अनुभव भी विस्तृत हैं और ज्ञान भी। स्वयं मीरा लोक-परलोक की गुत्थियाँ न समझना चाहे, लेकिन आत्मप्रसार करके जगत के साथ एक प्रत्यक्ष नाता तो जोड़ना ही चाहती है। पत्नीत्व और कुलकानि को तिलांजलि देकर उसे अपनी राहों का अन्वेषण स्वयं करना है। बेशक एक राह 'जोगी' की तलाश में 'पूर्ण पुरुष' को पाने की लालसा और आह्लाद तक जाती है, लेकिन ज्ञानार्जन की अभिलाषा में दूसरी राह साधुओं तक ही जाती है। साधु-संगति उसके लिए एक बृहत्तर और सार्थक दुनिया का प्रवेशद्वार है। साधु-संगति ने उसे राणा के दिए गहरे घावों को समझने, सहने और बिसारने का औदात्य दिया है – "हरष शोक म्हारे मन नांही, नहिं लाभ नहिं हानी।" फिर क्यों न वह "भाग खुल गए म्हारे साध संगत सूं' की प्रतीति में अपने को समृद्धतर करे? पारिवारिक उत्पीड़न ने उसकी दसों दिशाओं को बाधित किया है, साधु-संगति उसी में से उसे हरि के बहाने अपने को पाने की युक्ति बताती है। अपने वजूद को हवा के झोंके की तरह अमूर्त और हल्का बना कर कहीं भी आने-जाने की मानसिक स्वतंत्रता का गुरु-मंत्र पाकर मीरा क्यों न साधु-संगति की भूरि-भूरि प्रशंसा करे –

"धन आज की घरी, सत्संग में परी।
श्रीमद्भागोत श्रवण सुनी, रसना रटत हरी।
मन डूबत लीलासागर में, देही प्रीति धरी।
गुरु संतन की सोहनि सूरत, उर बिच आइ अरी।"

साधु-सेवा मीरा का सहज प्राप्य है, साधु-संगति नहीं। यह उसका सोचा-समझा निर्णय है। यह जगत से, अपने परिवेश से, अपने 'आत्म' से नया परिचय है। आत्मज्ञान नशा बन कर मीरा को भरमा रहा है –

"राणा कहे सौं एक न माना, साधु दुआरे नित आली हे माय।"

मीरा नशे की मादकता को संकल्प बना कर अपनी दिशाएँ और प्राथमिकताएँ तय करने लगती है –"चलां वाही देस प्रीतम पावां, चलां वाही देस"।

मीरा का गृहत्याग बुद्ध और महावीर की तरह जगत का परित्याग कर दार्शनिक प्रश्नों को सुलझाने और निर्वाण को पाने की ऊर्ध्वमुखी चेष्टा नहीं, जीवन के उल्लास को जीवन-प्रवाह के बीचोंबीच धँस कर भोगने की शिशुसुलभ उत्सुकता है। वह जीवन का नकार नहीं, जीवन का अभिषेक करना चाहती है, भले ही जिन साधुओं के सहारे वह अपनी बेड़ियाँ काट कर आई है, वे जीवन से विमुख हो समाज को अमूर्त ईश्वर की आराधना का पाठ पढ़ाते हैं। मीरा अपनी मुक्ति की सामाजिक स्वीकृति के लिए अपनी भावाभिव्यक्ति पर ईश-भक्ति का आरोपण करती है, उनकी तरह कहीं-कहीं निरगुनिया भाषा-प्रतीकों का प्रयोग भी करती है, लेकिन संसार को मिथ्या मानने का भाव उसमें नहीं पनपा है। वैराग्य मीरा को लोक और जगत दोनों से जोड़ता है। उसे सामाजिक पदानुक्रम में सबसे छोटे व्यक्ति के साथ संवाद की स्वतंत्रता देता है, और वह पाती है कि दोनों के सुख और दुख, आशाएँ और स्वप्न कितनी समानधर्मा हैं। उस अकेली ने तो जहर का प्याला नहीं पिया। यहाँ तो सभी 'घायल' हैं और 'घायल की गति' जानने, उसका उपचार करने को आतुर भी। राजसत्ता एवं परिवार संस्था के विरुद्ध मीरा के काव्य के प्रतिरोध के स्वर उसकी अपनी मनोकांक्षा बन जाते हैं और मीरा को मिलता है एक बृहद् परिवार।

बेशक वैराग्य ने मीरा के काव्य की प्रखरता को मंद किया है, किंतु उसके विद्रोह को एक नया आयाम देकर घर से बाहर स्त्री की अस्मिता और प्रतिष्ठा को स्वीकृति दी है। मीरा के काल तक स्त्रियों के लिए धर्मपरायणता का अर्थ था पति/पुरुष की सेवा, गार्हस्थिक-सामाजिक दायित्वों की पूर्ति, धार्मिक उत्सवों/अनुष्ठानों में यथानिर्दिष्ट भागीदारी, भक्ति की नित्यक्रमिक चर्या की पालना और साधु-सेवा। धर्म, धर्मग्रंथों के मर्म, ईश्वर के स्वरूप पर विचार करने या माया एवं अध्यात्म से जुड़े दार्शनिक प्रश्नों पर विचार करने की आज्ञा उसे नहीं थी क्योंकि वेदपाठ शूद्रों के साथ-साथ स्त्रियों के लिए भी वर्जित था और गार्गी आदि स्त्रियों की तरह तर्क करना स्त्रियोचित धर्म के प्रतिकूल था। स्त्री, न संन्यास लेने के लिए स्वतंत्र थी, न तीर्थाटन करने के लिए पहली बार मीरा इस वर्जना को तोड़ती है। संन्यास उसके लिए जीविकोपार्जन का जरिया ही नहीं, ईश्वर पर ध्यान केन्द्रित करने के बहाने आत्मस्थ होने का, साधु-संगति के बहाने ज्ञानार्जन करने तथा तीर्थाटन के बहाने गतिशील होने और अपना सामाजिक दायरा बनाने का महत्वपूर्ण माध्यम भी था। दरअसल देह में अवस्थित कामनाओं के ज्वार को पहचान कर ही मीरा अपनी निजता पाने के लिए महत्तर लक्ष्य की ओर उन्मुख हो सकी है। वैराग्य और भक्ति चूँकि मीरा का ध्येय नहीं रहा, इसलिए अपनी भावनाओं का उदात्तीकरण करने की बौद्धिक कवायद भी उनमें दिखाई नहीं देती।

आज की स्त्रीविमर्शकारों की तरह मीरा भी जानती हैं कि स्त्री की मुक्ति का रहस्य उसकी स्वतंत्र निर्णय क्षमता में निहित है। निर्णय लेना जितना महत्वपूर्ण है, उससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण है उसकी जवाबदेही के प्रति स्वयं को तैयार करना। मीरा अपने हर निर्णय के लिए जवाबदेह है। इसलिए गलत साबित होने पर किसी दूसरे को लांछित-धिक्कारती नहीं, स्वयं उस स्थिति से मुठभेड़ करने के लिए अपने को मानसिक-नैतिक रूप से तैयार करती है। साधु-संगति के लिए बेहद ललकती मीरा ने कभी सोचा भी न होगा कि जिस विषमतामूलक दमनकारी व्यवस्था को महल के भीतर छोड़ कर वह गलियों में आई है, वह अपने उसी दंभी, निर्लज्ज, नग्न रूप में साधुओं की जमात में मिलेगी। साधु-संगति की लालसा में वृंदावन और काशी की गलियों में घूमती मीरा को 'पुरुष' मिले हैं, 'साधु' नहीं। यह मीरा का मोहभंग है। तीर्थाटन उसे उद्देश्यहीन लगता है और ज्ञान-चर्चा पाखंड। आरम्भिक उत्साह के बाद मीरा अपने काव्य में साधुओं को लेकर अचानक मौन हो जाती है। बस, इतनी सी टिप्पणी करती है कि "कासी को लोग बड़ो बिसवासी, मुख मैं राम बगल मैं फांसी"। उसकी पूरक कथा 'वैष्णवन की वार्ता' में लिपिबद्ध है जहाँ मीरा मनुष्य नहीं, मादा देह है; पुरुषों की दुनिया में बलात् घुस कर उनका चरित्र स्खलन करने वाली मायास्वरूप कामिनी। क्या इसलिए कि उसने न किसी के दबाव में आकर किसी पंथ विशेष की दीक्षा ली और न अपनी साधना-पद्धति बदली? काव्य-रचना उसके लिए न पांडित्य प्रदर्शन का माध्यम रही, न भक्ति की दार्शनिक मीमांसा या परलोक प्राप्ति का सुलभ जरिया। वह तो उसके भीतर बहती भावनाओं का स्फोट है, आत्मालाप-आत्माभिव्यक्ति और आत्मप्रसार का जरिया जिसमें उसकी दमित वासनाएँ और अमूर्त सपने दोनों अपनी सम्पूर्ण सत्ता के साथ विद्यमान हैं – अपने मनोजगत् का प्रत्यक्षीकरण! पारदर्शी मीरा की दमघोंटू चुप्पी चरित्र-हनन के मर्मांतक घाव की टीस को अंत तक सहन न कर पाने की वेदना से जन्मी है। संसार से विरत योगियों की दुनिया में भी स्त्री-पुरुष का लौकिक पदानुक्रम कहीं अधिक घृणा और वासना के साथ मौजूद है। तो क्या ज्ञान व्यक्ति को मुक्त नहीं करता? उसकी क्षुद्रताओं और संकीर्णताओं पर शील और उदारता का मुलम्मा चढ़ाता है? मीरा की पीड़ा आज के स्त्री विमर्श की भी पीड़ा है। स्त्री को पत्नी/स्त्री से इतर कुछ भी 'होने' के लिए आग के दरिया से गुजरना ही होगा। 'नारि पुरुष के सम्बन्ध झूठे' – यह बोध मीरा को विरक्त बनाता है और उसकी असहायता को तीव्रतर करता है – "सगो सनेही मेरो और न कोई, बैरी सकल जहान।" वास्तव में यहाँ इस अनुभव

से गुजर कर मीरा को पहली बार सही मायनों में 'गली तो चारों बंद हुई' की प्रतीति होती है। जाहिर है इसके बाद 'रण' छोड़ कर द्वारिका के रणछोड़ कृष्ण में समर्पण और दैन्य से भरी निष्क्रिय भक्ति करना जीवित मीरा की लौकिक मजबूरी बन जाती है। विश्वासभंग की इस चोट ने मीरा से जीवन की महक, उल्लास, संघर्ष और आशा की खनकती गूँज को छीन लिया है।

16.6 मीरा की सीमा : पितृसत्तात्मक व्यवस्था का आंतरिकीकरण

'आधी राणा की फौज, आधी मीरा एकली रे' का उद्घोष करने वाली मीरा की तेजोमयता मलिन होते-होते जब आत्मदया में तब्दील होने लगती है, तब पितृसत्तात्मक व्यवस्था की कार्य-शैली की पड़ताल करना अनिवार्य हो जाता है। आखिर 'मनुष्य' को तोड़ कर 'छवि' बनाना इतना सरल नहीं होता। सीमोन द बउवार ने बहुत ठीक कहा है कि पुरुष कभी स्त्री का साथी, मित्र, हितैषी नहीं रहा। जज, ज्यूरी, अभियुक्त आदि सभी भूमिकाओं में अदालत में वह खुद बैठा है, अतः स्त्री की फरियाद पर कान न देना और उल्टे उसे ही सींखचों के पीछे धकेल देना उसका 'धर्म' है। यह शासन-तंत्र की कूटनीति है और आत्मरक्षा का नुस्खा भी। पुरुष का 'आत्म' अपने पूरे वर्ग के अहं की रक्षा के साथ जुड़ा है, इसलिए स्त्री के दमन के लिए स्त्रीद्वेषी युक्तियों को अपनाने, स्त्री को लेकर कुत्सित कुटिल यथार्थ को गढ़ कर उसी में 'स्त्री-सत्य' को कैद करने, उस आरोपित 'स्त्री सत्य' के सहारे 'बुद्धिहीना', 'कामिनी' स्त्री को फटकारने-धिक्कारने का विवेकशील 'पुरुष-धर्म' और हाशिए पर फेंकी गई स्त्री को रोटी- कपड़ा-मकान जैसी भौतिक सुविधाएँ देकर गृहस्वामिनी/देवी बनाने जैसा 'बड़प्पन' जताने के पीछे अपनी स्थिति को निरापद बनाने की साजिशें हैं। स्त्री उसकी 'सहयोगिनी' है और उसी के जरिए वह स्त्री को अपनी सत्ता पर समग्रता और निस्संगता से विचार न करने का संस्कार देता है। इसलिए यह व्यवस्था सबसे पहले माँ के रूप में ही बेटी (स्त्री) पर वर्जनाओं के अंकुश लगा उसे 'बधिया' करती है और उसे 'मनुष्य' नहीं, 'स्त्री' बनने का प्रशिक्षण देती है। इस प्रशिक्षण में लाज, संकोच, शील जैसे अमूर्त मानवीय मूल्यों को आभूषण की तरह शोभित करने के साथ-साथ नख से शिख तक भौतिक आभूषणों को धारण करने, उसे 'भर्त्ता' पुरुष की सामाजिक हैसियत से जोड़ कर देखने और सुहाग-चिन्ह का रूप देने का संस्कार विद्यमान है। आभूषण को सौन्दर्य और सौन्दर्य को 'स्त्रीत्व' के साथ जोड़ कर आभूषण को स्त्री के लिए अपरिहार्य बना देना असल में पुरुष-प्रधानता के लिए स्त्री की चेतना को कंडीशन करना है। मीरा सजग-सचेत अवस्था में विद्रोह की टंकार करते हुए आभूषणों के परित्याग की गर्वभरी घोषणा करती हैं किंतु आक्रांत कर लेने वाले यथार्थ का सामना न कर पाने की अवशता में जब अपनी स्त्री-नियति का स्वीकार करती हैं तो हरि को रिझाने के लिए व्यवस्था की वाणी ही बोलने लगती हैं –

'म्हे तो नखसिख गहणों पहरियो, म्हे तो जास्यां सांवलड़ा री सेज।''

यह व्यवस्था स्त्री के अहं और व्यक्तित्व दोनों को ही बचपन से विकसित नहीं होने देती। अबला और परनिर्भर होने का बोध उसकी सीमाओं को सुपरिभाषित करता चलता है। जाहिर है मान और स्वाभिमान की बात उसके लिए बेमानी हो जाती है। प्रमुख रहती है अनुकंपा की याचना – ''हा हा करत हूं, पैयां परत हूं, मत करो मान गुमान।'' पति के दंभ की धज्जियाँ उड़ा देने वाली मीरा-सरीखी स्त्री की यह कातरता उसकी शक्ति के चुक जाने से ज्यादा शक्ति को सही दिशा में निवेशित न कर पाने की दृष्टिहीनता से उपजी है। यह दृष्टिहीनता अंततः पितृसत्तात्मक व्यवस्था के आंतरिकीकरण की अलक्षित प्रक्रिया को त्वरित करती है जहाँ नकारी जाने वाली शक्ति (पुरुष वर्चस्व) ही उपास्य, लक्ष्य और

स्वप्न बन जाती है। यहीं से आत्मदया और आत्मविघटन की प्रक्रिया शुरू होती है – ''म्हे तो जनम जनम की दासी, थे म्हारां सिरताज'' तथा ''तुम तो स्वामी गुण रा सागर, म्हारा औगण चित्त मत ल्याज्यो'' – जो 'म्हाने चाकर राखो जी' शृंखला के अनेक पदों में आत्मसम्मान को न्यूनतम करते हुए 'जो थे देशी, सो म्हे लेशी, याई मत म्हारे पूरी' की रिरियाती याचना में अंतिम परिणति पाती है।

दरअसल स्वयं मीरा अपनी लैंगिक पहचान से मुक्त नहीं हो पाई है। बेशक सजग तौर पर वह जानती है कि मानवीय मूल्यों का दंभ भरने वाली पितृसत्तात्मक व्यवस्था में 'मनुष्य' का निषेध है। यहाँ उसके स्थानापन्न रूप में हैं लिंग, वर्ण, वर्ग। आम स्त्री की तरह मीरा की भी यह त्रासदी है कि अवचेतन में व्यवस्था के इसी दबाव को उसने संस्कार रूप में ग्रहण किया है। इसलिए मीरा की 'स्वप्न-पुरुष' की अवधारणा पुरुष से चोट खाकर पुरुष में ही अपने स्त्रीत्व की सार्थकता ढूँढ़ती है। चूँकि वह स्वयं 'स्त्री' है (विशिष्ट लैंगिक पहचान से युक्त सामाजिक निर्मिति), अतः सहचर की कामना में पुरुष हमेशा 'पति' रूप में आ विराजता है और वह दासी रूप में। अपनी तमाम मासूमियत में मीरा नहीं जान पाती कि समर्पण की इस दैन्य अवस्था में उसने कृष्ण/स्वप्न पुरुष को पति की ही तरह अलभ्य, कठोर, छलिया और श्रेष्ठ बना दिया है जिसके संग सम्बन्ध निभाने की इकतरफा कोशिश उसी के हिस्से आन पड़ी है –

''थे तो पलक उघाड़ो दीनानाथ, मैं हाजिर नाजिर कब की खड़ी।''

यहीं इस बिंदु पर अनायास वह स्त्री की परंपरापोषित निष्क्रिय और अनुत्पादक छवि की प्रतिष्ठा करने लगती है जहाँ स्त्री प्रतीक्षारत है (''कान्हा तोरी रे जोवत रह गई बाट''); अकेली और असुरक्षित है (''हो जी महाराज छोड़ तम जाओ, मैं अबला बल नाहिं गुसाईं, तुम्हीं मेरे सिरताज। मैं गुणहीन गुण नाहिं गुसाईं, तुम समरथ महाराज''); विरह-विदग्ध है (''हो जी हरि कित गए नेह लगाए... मेरे मन में ऐसी आवे, मरूं जहर विष खाय'') और अपनी निष्ठा का मुखर प्रदर्शन कर अनुकंपा पाना चाहती है (''म्हारा जनम मरण का साथी, थांने नाहिं बिसरूं दिन राती।'') मीरा स्त्री-सुबोधिनी से भी खूब परिचित हैं। अतः आदर्श स्त्री की आचार-संहिता की परिपालना में हरि की आँख की पुतली बनी रहना चाहती है। इस आचार-संहिता में नित्यप्रति धर्मोपदेश का श्रवण है, साधु-सेवा का व्रत है, सुमिरन-ध्यान का नेम है, नेकी-बदी के प्रति जवाबदेही है और 'मन हस्ती अंकुस दै मार्‌यौ' की कठिन साधना है। यह साधना अपने को न्यूनतम करते-करते अमूर्त कर देने का षड्यंत्रकारी प्रशिक्षण है। ऐसा नहीं कि मीरा इन षड्यंत्रों को न समझती हो। तीसरे चरण में रचे इन पदों में अवसाद, हताशा, टूटन, थकान, पस्ती, विश्रांति, दुचित्तापन, आत्मधिक्कार आदि इसीलिए हैं कि अपनी मूल वृत्ति से दूर मीरा को सामाजिक स्वीकृति के लिए वही सब करना पड़ा जिनका वह जीवन भर विरोध करती रही है। चिंतक के रूप में यह मीरा की असफलता है।

मीरा उत्पीड़न का विरोध कर उन्मुक्त स्त्री का सपना देख सकती है, अपनी स्त्री-नियति को बदल नहीं सकती। मीरा का स्त्री विमर्श इस तथ्य को बहुत गहरे रेखांकित करता है कि व्यवस्था एक साथ अमूर्त और ठोस है, जड़ और सनातन। इसके पास न संवेदना है न भाषा। अतः संवाद की संभावना भी नहीं। अपनी मूल संरचना में यह यंत्र-मानव है – मनुष्यता का निषेध कर मनुष्यता का दिखावा करने वाला तकनीकी कौशल। मीरा के अंतर्विरोध – पितृसत्तात्मक व्यवस्था का आंतरिकीकरण करने की मानसिकता – एक इकाई के रूप में मीरा की पराजय को भले ही संकेतित करें, मीरा द्वारा उत्पन्न स्त्री-चेतना को धूमिल नहीं करते।

16.7 सारांश

स्त्रीवादी आलोचना, मीरा के समूचे काव्य को उत्पीड़ित स्त्री के आर्त्तनाद और विरहिणी प्रिया के मार्मिक हाहाकार का प्रामाणिक दस्तावेज मानती है। स्त्री के निजी जीवन की अनुभूतियाँ और गोपन मन की रहस्यात्मकता जिस सूक्ष्म भाव से मीरा-काव्य में व्यंजित हुई हैं, वह उसे अन्य भक्त कवियों से अलगाता है। मीरा के पद अपनी मूल संरचना में उत्कट भावोच्छ्वास में लिखी गई डायरी की प्रविष्टियाँ हैं जहाँ न अपने को बेहतर रूप में प्रस्तुत करने की सामाजिकता है, न विकारों को छुपाने की व्यावहारिकता। है तो अपनी भौतिक सच्चाई को अकुंठ निर्भीक भाव से स्वीकारने की ईमानदारी।

एक औसत स्त्री की तरह मीरा सरलहृदया है, किंतु औसत स्त्री से भिन्न ज्ञानपिपासु भी। अपने ही वृत्त में बंद स्त्री जीवन की नियति के कारण मीरा के अनुभव सीमित हैं लेकिन वह आरोपित स्त्री-नियति से ऊपर उठ कर 'अपने' को तलाशना और सँवारना चाहती है। साधु-संगति मीरा के लिए ज्ञानार्जन और आत्मविस्तार का जरिया है – भौतिक जगत के रहस्यों को जानने, जगत के साथ अपने सम्बन्धों को गुनने और अपनी मानवीय सत्ता को एक सार्थक दिशा देने का। उल्लेखनीय है कि इस तलाश में परिवार और सम्बन्धों का निषेध नहीं है, बल्कि उनके अर्थ और अंतरंगता का विस्तार है।

मीरा के भीतर की नारी, वैषम्य एवं दमन पर आश्रित पितृसत्तात्मक व्यवस्था की जड़ता के कारण आहत है। वह स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में परस्पर समानता, सद्भाव और हार्दिकता की मांग करती है जहाँ किसी एक का व्यक्तित्व दूसरे का विलयन न करे, बल्कि साथ-साथ विकास और परिष्कार की संभावनाओं को फलीभूत करे। मीरा आरोपित विवाह सम्बन्ध को अस्वीकार कर स्त्री द्वारा स्वयं पति रूप में पुरुष का वरण करने की स्वतंत्रता की पक्षधर है। चूँकि पितृसत्तात्मक व्यवस्था स्त्री के पुरुष-निरपेक्ष रूप पर विचार करने की स्वतंत्रता ही नहीं देती, अतः मीरा इस व्यवस्था का अतिक्रमण करने के लिए स्वप्न-लोक रचती है जहाँ की सामाजिकता विवाह-सूत्र में बँधी स्त्री के समक्ष न पातिव्रत्य की कठोर एकांगी साधना का आदर्श प्रस्तुत करती है, न वैधव्य का अभिशाप। मीरा परमुखापेक्षी स्त्री का मिथक तोड़ कर स्वतंत्र निर्णय लेती नई स्त्री छवि को गढ़ती है।

कृत्रिमता एवं छद्म छल-छंद से सर्वथा मुक्त मीरा, स्त्री-मानस को उसकी उद्दाम कामनाओं के साथ चित्रित करती हैं। मीरा के पदों को यदि आध्यात्मिकता के कुहासे से मुक्त किया जाए तो वे जीवन के राग, उल्लास, उत्सव और ठाठ-बाट के साथ ऐन्द्रिकता के उद्दाम का भी संस्पर्श करते हैं। मीरा की स्त्री फैल-फूट कर अपना वजूद पाना चाहती है। उसके भीतर जीवन ठाठें मार रहा है। वह अपने को बचाना चाहती है। इसलिए प्रेम पर भक्ति का अरोपण कर प्रिय की स्मृतियों के साथ अपने अनुभव संसार – प्रीत – को अमर कर देना चाहती है। मीरा के विरह पदों में मूर्त का अमूर्तीकरण व्यवस्था के प्रति मीरा के निरुपाय समर्थन की व्यथा है। यही कारण है कि मीरा के इन तथाकथित भक्ति पदों की उत्कटता, हार्दिकता एवं भास्वरता क्षीणतर होते–होते भक्ति के लयबद्ध सुमिरन में घुट कर रह गई है। विद्रोह और दीनता के दो कूलों में प्रवाहित मीरा के स्त्री विमर्श का यह अंतर्विरोध समकालीन स्त्री विमर्श में भी कमोबेश इसी रूप में उपस्थित है जो स्त्री मुक्ति आंदोलन को 'मानवीय पहचान' का आंदोलन न बना कर पुरुष की स्वीकृत और अनुकंपा पाने का उपहासास्पद अनुष्ठान बना देता है।

16.8 अभ्यास प्रश्न

1. स्त्री विमर्श से आप क्या समझते हैं?
2. मीराकालीन समाज में स्त्री की स्थिति स्पष्ट कीजिए।
3. मीरा-काव्य में पितृसत्तात्मक व्यवस्था के प्रति विद्रोह किस रूप में उभरा है? विवेचित कीजिए।
4. विवाह संस्था ने मीरा का उत्पीड़न कैसे किया?
5. मीरा साधु-संगति के माध्यम से क्या पाना चाहती थी?
6. मीरा के स्वप्न-पुरुष की विशेषताएँ बताइए।
7. मीरा को आधुनिका स्त्री क्यों कहा जा सकता है?
8. मीरा ने कौन-कौन से स्वतंत्र निर्णय लिए?
9. मीरा ने प्रेम पर भक्ति का आरोपण क्यों किया?
10. मीरा के स्त्री विमर्श की सीमाएँ स्पष्ट कीजिए।

इकाई 17 हिंदी आलोचना में मीरा

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 भक्तिपरक लेखक

17.3 इतिहास ग्रंथों में मीरा

17.4 हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में मीरा

17.5 प्रामाणिक पाठ की खोज

17.6 मीरा का सम्प्रदाय

17.7 मीरा की कविता में जोगी

17.8 प्रगतिशील आलोचना में मीरा

17.9 दलित समाज और मीरा

17.10 महात्मा गाँधी और मीरा

17.11 काव्यकला

17.12 सारांश

17.13 अभ्यास प्रश्न

17.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप -

- हिन्दी आलोचना में व्यक्त मीरा की छवि को जान सकेंगे;
- विभिन्न हिन्दी आलोचकों के परस्पर विरोधी मतों को समझ सकेंगे;
- हिन्दी आलोचना में मीरा की बदलती हुई छवि का अध्ययन कर सकेंगे; और
- हिन्दी आलोचना में व्यक्त मीरा की छवि के आधार पर मीरा के जीवन और कविता को समझ सकेंगे।

17.1 प्रस्तावना

मीरा हिंदी की महत्वपूर्ण भक्त कवयित्री है। मीरा हिंदी के अन्य भक्त कवियों की तरह लोक जीवन की स्मृति में जीवित रचनाकार है। गोरखनाथ, कबीर, सूर, तुलसी और मीरा को भारतीय समाज ने याद रखा है। उनके साहित्य का बड़ा हिस्सा (विकृत रूप में ही सही) लोक साहित्य का हिस्सा है। उनके जीवन के बारे में कई तरह की किंवदंतियाँ, चर्चाएँ और अफवाहें हमारे समाज में पीढ़ी दर पीढ़ी चलती आ रही हैं। युगों से मीरा भारतीय समाज की प्रशंसा पाती रही हैं। मीरा की इस प्रशंसा और स्वीकृति में हिंदी समाज ने अपनी

मानवीयता की साख को बचाए रखा है। मीरा की यह स्वीकृति इन किंवदंतियों, कथाओं, गीतों, नाटकों और संगीत की स्वर लहरियों में गूँजती रही है। अन्य रचनाकार जहाँ आलोचना पर निर्भर रहते आए हैं, वहाँ मीरा को आलोचना का सहारा नहीं लेना पड़ा। उनकी प्रसिद्धि का आधार हिंदी आलोचकों का लेखन नहीं रहा है। वैसे देखा जाए तो मीरा पर हिंदी में बहुत कम आलोचकों ने लिखा है। शोध की दृष्टि से जहाँ पद्मावती शबनम, डॉ. सी.एल. प्रभात और डॉ. कल्याण सिंह शेखावत का नाम आता है, वहाँ आलोचनात्मक पुस्तक के रूप में मात्र विश्वनाथ त्रिपाठी की पुस्तक "मीरा का काव्य" तथा अंग्रेजी में परिता मुक्ता की पुस्तक "Upholding the Common Life" की याद आती है। शेष आलोचकों ने मीरा पर फुटकर आलोचनात्मक लेख लिखे हैं। यहाँ तक कि हिंदी के मान्य एवं प्रतिष्ठित आलोचकों यथा रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, रामविलास शर्मा, नामवर सिंह ने कुछ छिटपुट टिप्पणियाँ की हैं। फिर भी एक सामान्य पाठक के मन में मीरा की छवि एक महत्वपूर्ण रचनाकार की रही है। यह छवि उनकी जनसमाज द्वारा निर्मित छवि रही है। हिंदी आलोचना में जब मीरा के जीवन और साहित्य पर विचार-विमर्श प्रारंभ हुआ, तब यह छवि आलोचना में भी उभरने लगी। इस तरह कहा जा सकता है कि मीरा की प्रारंभिक आलोचना इन अफवाहों, किंवदंतियों और दंत कथाओं के रूप में सामने आई। इनमें मीरा के जीवन, व्यक्तित्व, उनके साहस, स्पष्टवादिता, निष्ठा और विद्रोह आदि पर अधिक चर्चा हुई। उसकी कृष्ण भक्ति, परिवार की असहमति भी दर्ज होती गई।

यहाँ एक बात कहना जरूरी है। मीरा अपनी कविता में अपने बारे में बहुत सी बातें खुलकर कहती हैं। वह कुछ छिपाती नहीं। वह अभिव्यक्त करती हैं। और यह अभिव्यक्ति मध्यकाल में निराली है। आमतौर से भक्त कवि अपने बारे में कुछ भी कहने से बचते हैं। वे तो भगवान की कथा कहते हैं। राम और कृष्ण के बारे में कहते हैं। आत्मा और परमात्मा का विवेचन करते हैं। अपने बारे में क्या कहें? स्वयं को वे अकिंचन मानते हैं। स्वयं के मानने को, स्वयं के कर्म को महत्व नहीं देते। विषय को महत्व देते हैं। स्वयं तो शरीर है। शरीर के बारे में क्या कहें? यह कार्य तो आधुनिक काल के कवियों ने किया। छायावाद में यह सबसे पहले दृष्टिगत होता है। यहाँ मीरा मध्यकाल के अन्य भक्तों और संतों से अलग हैं। वे बोलती हैं और जोर देकर बोलती हैं। और वे कविता में बोलती हैं। यह बोलना उन्हें आधुनिक बनाता है। यह महत्वपूर्ण है। साथ ही अब हम जान पाते हैं कि मीरा ने अपने बारे में क्या कहा? वह भी एक प्रमाण तो है ही। इस तरह हम कविता से मीरा के जीवन के बारे में, उनके व्यक्तित्व के बारे में अधिक सटीक जानकारी प्राप्त कर पाते हैं।

हिंदी आलोचना में मीरा की चर्चा करते समय यह भी देखने में आया है कि जब भी कोई आलोचक उनकी कविता पर विचार करता है, तब उनके जीवन पर भी टिप्पणी करता है। इसी तरह जो विद्वान मीरा के जीवन और व्यक्तित्व का विश्लेषण करता है; वह अन्तः साक्ष्य के रूप में मीरा की कविता को उद्धृत करता है। यह विरल विशेषता मीरा की अपनी है क्योंकि मीरा के कृतित्व और व्यक्तित्व में कोई फाँक नहीं है। कोई अन्तर्विरोध नहीं है। जैसा उन्होंने लिखा, वैसा जीवन जीया। इसलिए उनकी कविता से उनके व्यक्तित्व को निर्मित किया जा सकता है। जब कोई आलोचक मीरा की नई छवि बनाने का प्रयास करता है तब वह उनकी कविता और जीवन दोनों पर टिप्पणी करता है। चाहे मीरा के विरोधी हों, चाहे समर्थक; प्रगतिवादी हों या स्त्रीवादी सभी आलोचक मीरा की कविता के साथ ही उनके जीवन पर भी टिप्पणी करते हैं। उनके बारे में प्रचलित किंवदंतियों और अफवाहों की नई व्याख्या करते हैं।

असल में मीरा का व्यक्तित्व लीक से हटकर है, इसलिए उनकी कविता भी परंपरा से हटकर है। चूँकि व्यक्तित्व मौलिक है, सामाजिक खाँचे से निर्मित नहीं है, उनकी चाल "अनूठी" है, इसलिए मीरा के बाद के इतिहास में होने वाले परिवर्तनों के अनुसार उनकी

छवि बदलती रही है। उसकी नई व्याख्या की संभावना बनी रहती है। सपाट, साफ-सुथरा, सामाजिक मान्यताओं के अनुसार जीवन जीने वाले कवियों, लेखकों और कलाकारों में यह संभावना कम होती है। मीरा में यह संभावना है, इसलिए वह अपने युग से परे हट जाती है और परे हटते ही वह सभी युगों में समाहित होने की संभावना से युक्त हो जाती हैं। इसलिए प्रगतिवादी उसमें वैसी मीरा तलाश लेते हैं, रहस्यवादी अपने मतलब की मीरा ढूँढ़ लेते हैं, अस्तित्ववादी मीरा को अपने रंग में रंग देते हैं। इस उलझन से बचने के लिए विश्वनाथ त्रिपाठी ने लिखा कि "कविता और जीवन में संबंध जरूर हेता है, किंतु यह संबंध सब समय सीधा-सरल नहीं होता, कि रचनाकार के जीवन और उसकी कला में यांत्रिक तौर पर तालमेल बिठाया जा सके।"

17.2 भक्तिपरक लेखक

मीरा की कविता और उनके जीवन पर तीन तरह के लोगों ने विचार किया है - भक्ति परक लेखक, इतिहास लेखक, साहित्य समीक्षक। मीरा की कविता की आलोचना का प्रारंभ उनके अपने युग में ही हो गया था। वे अपने समय में अलक्षित नहीं थीं। उनकी पहचान अपने काल में हो गई थी। उनके विरोध और समर्थन के दल बन गए थे। तत्कालीन भक्त समाज में मीरा, चर्चा का विषय बन गई थी। लोग मीरा को आकर उनके संदर्भ में होने वाली चर्चाओं से अवगत करा जाते थे। "कोई निंदो कोई बंदौ", मीरा अपने रास्ते पर चल रही थी। निंदा करने वाले और वेदना प्रदान करने वाले दोनों मौजूद । मीरा की कविता और जीवन के बारे में सर्वाधिक प्रामाणिक पहली टिप्पणी नाभादास के "भक्तमाल" में मिलती है। "भक्तमाल" में मीरा के जीवन के बारे में कई जानकारियाँ दी गईं हैं, जो अन्य स्रोतों से भी पुष्ट होती हैं तथा स्वयं मीरा की कविता में भी अभिव्यक्त हुई हैं। उनका एक छंद मीरा के व्यक्तित्व का समग्र मूल्यांकन प्रस्तुत करता है -

सदृश गोपिका प्रेम प्रगट कलिजुगहिं दिखायौ।
निरअंकुश अति निडर रसिक-जस रसना गायौ।।
दुष्टनि दोय विचारि मृत्यु को उद्यम कीयौ।
बार न बाँकौ भयौ, गरल अमृत ज्यों पीयौ।।
भक्ति निसान बजाय कै, काहू ते नाहिन लजी।
लोक लाज कुल शृंखला तजि मीराँ गिरधर भजी ।। 115 ।।

अर्थात् मीरा बाई ने इस कलियुग में गोपियों जैसा प्रेम प्रकट किया। निरंकुश और अत्यन्त निडर होकर उन्होंने रसिक-शिरोमणि प्रभु श्रीकृष्णचन्द्र के यश का गान किया। दुष्टों ने समझा कि इस प्रकार की भक्ति-रीति एक स्त्री के लिए अत्यन्त अनुचित है, अतः उनकी मृत्यु का उपाय किया, किन्तु भगवत्-कृपा से उनका बाल भी बाँका न हुआ। जो जहर उन्हें पीने के लिए दिया गया था उसे वे अमृत के समान पी गईं। उन्होंने नगाड़ा बजाकर खुले रूप में भगवान को भजा और किसी की लज्जा नहीं की। इस प्रकार लोक-लज्जा और कुल-रीति की बेड़ियों को तोड़कर श्री मीरा बाई ने गिरधरगोपाल का भजन किया।

यह मीरा पर प्रथम सकारात्मक टिप्पणी है। परन्तु अन्य विचारकों ने इतनी सकारात्मक टिप्पणियाँ नहीं की हैं। "चौरासी वैष्णवन की वार्ता" और "दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता" में मीरा की निंदा की गई है। इन वार्ताओं से मीरा के वल्लभ संप्रदाय से दूरी का आभास होता है। इसके अलावा साम्प्रदायिक ग्रन्थों में मीरा का उल्लेख लगभग नहीं होता। अपने जीवन काल में अन्य भक्त सम्प्रदायों से मीरा थोड़ी अलग-थलग दिखाई देती है।

हालांकि सामान्य निरक्षर ग्रामीण जनता ने मीरा को सहज ही अपना लिया था। परिता मुक्ता ने अपने शोध-प्रबंध में विस्तार से राजस्थान और गुजरात में दलित और कृषक

जातियों में प्रचलित संध्याओं में मीरा के भजन गाने की लम्बी ऐतिहासिक परंपरा का विश्लेषण किया है। लोक स्मृति में मीरा के जीवित रहने में इन भजन संध्याओं का हाथ है। इसे परिता मुक्ता ने विस्तार से स्पष्ट किया है। इन भजन गायकों द्वारा मीरा को एक अर्थ भी दिया गया है, कि मीरा सामंतवाद विरोधी, अन्याय अत्याचार के सामने डट कर खड़ी रहने वाली वीर नारी है।

17.3 इतिहास ग्रंथों में मीरा

मेवाड़ के राजपरिवार से विरोध के कारण उस युग के इतिहासकारों ने अपने ग्रंथों में मीरा का कहीं उल्लेख नहीं किया। सिसोदिया परिवार, मीरा की प्रत्येक स्मृति को मिटा देना चाहता था, अतः कहीं भी मीरा का उल्लेख नहीं किया गया। जहाँ पर भी मीरा का उल्लेख होता, वहाँ वह कुल नाशी, प्रतिष्ठा को चोट पहुँचाने वाली ही बताई जाती। राजपरिवार की यह टीस बरसों तक बनी रही। इतिहासकारों में सबसे पहले कर्नल टाड ने अपने ग्रंथ "Annals and Antiquities of Rajasthan " में मीरा का उल्लेख किया।

कर्नल टाड ने मीरा के बारे में लिखा -"मीरा मेवाड़ के राणा कुंभा की पत्नी थी। वे सौन्दर्य और स्वच्छंद पवित्रता के लिए अपने युग की सबसे प्रसिद्ध राजकुमारी थी। उन्होंने बहुत से गीत लिखे, जो भक्तों में प्रचलित हैं। मीरा के काव्य तत्व से उनके पति को प्रेरणा मिली या कुंभा से उन्हें काव्य सौन्दर्य प्राप्त हुआ, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। भक्ति के अतिरेक एवं स्वच्छंदता के कारण अनेक प्रवादमूलक कथाओं को जन्म मिल गया।" स्पष्ट है कि टॉड ने तथ्यात्मक भूलें की है, जिसकी ओर परवर्ती शोधकर्ताओं ने ध्यान आकर्षित किया है, परन्तु उनका महत्व इस दृष्टि से उल्लेखनीय है कि परवर्ती ग्रंथों में मीरा के बारे में शोध की आवश्यकता महसूस की गई तथा मीरा के महत्व और उनकी विद्वत्ता और गंभीरता को उन्होंने रेखांकित किया।

मेवाड़ के इतिहास ग्रंथों में सबसे पहले कविराजा श्यामलंदास ने "वीर विनोद" (17वीं सदी) में मीरा का उल्लेख किया है। कहा जाता है कि इसकी केवल चार प्रतियाँ ही छप पाई थी। मेवाड़ सरकार ने इसे छापने नहीं दिया। उन्होंने कर्नल टाड की गलतियों को सुधारते हुए केवल इतना ही कहा कि मीरा महाराणा सांगा की पुत्रवधू और राव दूदा की पौत्री थी। उनकी भक्ति और उनके क्रांतिकारी व्यक्तित्व के बारे में वे मौन हैं। इसके पश्चात् पं. गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने अपने ग्रंथ "उदयपुर राज्य का इतिहास" में मीरा का विशेष उल्लेख किया है।

ओझा जी ने विस्तार से मीरा के जीवन और भक्ति पर सकारात्मक टिप्पणी की है: "हिन्दुस्तान में बिरला ही ऐसा गांव होगा, जहाँ भगवानभक्त हिन्दू स्त्रियाँ या पुरुष मीराबाई के नाम से परिचित न हो और बिरला ही ऐसा मन्दिर होगा, जहाँ उसके बनाए हुए भजन न गाए जाते हों। मीराबाई मेड़ते के राठौड़ राव दूदा के चतुर्थ पुत्र रत्नसिंह की, जिसको दूदा ने निर्वाह के लिए 12 गांव दे रक्खे थे, इकलौती पुत्री थी। उसका जन्म कुड़की गांव में वि. सं. 1555 (ई.स. 1498) के आसपास" होना माना जाता है। बाल्यावस्था में ही उसकी माता का देहान्त हो गया, जिससे राव दूदा ने उसे अपने पास बुलवा लिया और वहीं उसका पालन-पोषण हुआ। वि. सं. 1572 (ई.स.1515) में राव दूदा के देहान्त होने पर वीरमदेव मेड़ते का स्वामी हुआ। गद्दी पर बैठने के दूसरे साल उसने उसका विवाह महाराणा सांगा के पुत्र कुंवर भोजराज के साथ कर दिया। विवाह के कुछ वर्षों बाद युवराज भोजराज का देहान्त हो गया। यह घटना किस सम्वत् में हुई, यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है, तो भी संभव है कि यह वि. सं. 1575 (ई.सं. 1518) और 1580 (ई. स. 1523) के बीच किसी समय हुई हो।

मीरा बाई बचपन से ही भगवानभक्ति में रुचि रखती थी, इसलिए वह इस शोकप्रद समय में भी भक्ति में ही लगी रही। यह भक्ति उसके पितृकुल में पीढ़ियों से चली आती थी। दूदा, वीरमदेव और जयमल सभी परम वैष्णव थे। वि. सं. 1584 (ई. स. 1527) में उसका पिता, रत्नसिंह, महाराणा सांगा और बाबर की लड़ाई में मारा गया। महाराणा सांगा की मृत्यु के बाद रत्नसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ और उसके भी वि.सं. 1588 (ई. स. 1531) में मरने पर विक्रमादित्य मेवाड़ की गद्दी पर बैठा। इस समय से पूर्व ही मीराबाई की अपूर्व भक्ति और भावपूर्ण भजनों की ख्याति दूर-दूर तक फैल गई थी और सुदूर स्थानों से साधु संत उससे मिलने आया करते थे। इसी कारण विक्रमादित्य उससे अप्रसन्न रहता और उसको तरह तरह की तकलीफें दिया करता था। ऐसा प्रसिद्ध है कि उसने उस (मीराबाई) को मरवाने के लिए विष देने आदि के प्रयोग भी किए, परंतु वे निष्फल ही हुए। मीराबाई की ऐसी स्थिति जानकर उसको वीरमदेव ने मेड़ते बुला लिया। वहाँ भी उसके दर्शनार्थी साधु संतों की भीड़ लगी रहती थी। जब जोधपुर के राव मालदेव ने वीरमदेव से मेड़ता छीन लिया, तब मीराबाई तीर्थयात्रा को चली गई और द्वारकापुरी में जाकर रहने लगी, जहाँ वि.सं. 1603 (ई.स.1546) में उसका देहान्त हुआ।

भक्तशिरोमणि मीराबाई के बनाए हुए ईश्वर भक्ति के सैकड़ों भजन भारत भर में प्रसिद्ध हैं और जगह-जगह गाए जाते हैं। मीरा बाई का मलार राग तो बहुत ही प्रसिद्ध है। उसकी कविता भक्तिरस पूर्ण सरल और सरस है। उसने राग-गोविन्द नामक कविता का एक ग्रंथ भी बनाया था। मीराबाई के संबंध की कई तरह की बातें पीछे से प्रसिद्ध हो गई हैं, जिनमें ऐतिहासिक तत्व नहीं है।" इसके अलावा कुछ इतिहास ग्रंथों में मीरा का छिटपुट उल्लेख मिलता है।

इन प्रारंभिक इतिहास ग्रंथों में मीरा के जीवन वृत्त की प्रामाणिक जानकारी देने का प्रयास किया गया है। इनका ध्यान मुख्यतः इस बिन्दु पर रहता था कि मीरा राव दूदा की बेटी नहीं पोती थी, या उसका जन्म ठीक-ठीक कहाँ हुआ? उसकी माता की मृत्यु कब हुई? उसके पति राणा कुंभा नहीं, वरन् भोजराज थे। फिर इन लोगों ने इस बिन्दु पर भी विचार किया कि मीरा अपनी कविताओं में जिस राणा का जिक्र करती है, वह खल पात्र राणा कौन था? कुंभा था या सांगा या भोजराज या मीरा का देवर विक्रमादित्य? मीरा की भक्ति पद्धति और उसकी सर्जनात्मक पद्धति पर इनका ध्यान नहीं के बराबर था।

इस परंपरा की अगली पुस्तक मुंशी देवीप्रसाद की "मीराबाई का जीवन चरित्र" है। मुंशी देवी प्रसाद इतिहासकार थे। उनकी 30 पृष्ठों की संक्षिप्त पुस्तिका का प्रकाशन् संवत् 1955 में हुआ। इन्होंने मेवाड़ के इतिहासकारों विशेषतः कविराज श्यामलदास और गौरीशंकर हीराचंद ओझा द्वारा प्रदान की गई जानकारियों के आधार पर मीरा की मुकम्मल जीवनी लिखी। यह पुस्तक इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है कि यह मीरा पर पहली स्वतंत्र पुस्तक है। इन्होंने मीरा के जीवन से संबंधित ऐतिहासिक घटनाक्रम और उन घटनाओं का मीरा के जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण किया। इस ऐतिहासिक सामग्री के साथ उन्होंने मीरा के संबंध में प्रचलित किंवदंतियों का भी विश्लेषण किया।

इसके बाद 1949 में "मीरा स्मृति ग्रंथ" प्रकाशित हुआ जिसमें अनेक विद्वानों के लेख संकलित हैं। इस ग्रन्थ में मीरा की छवि एक ऐसी स्त्री की बनती हुई दिखाई देती है जो घर के पुरुषों और कुटुम्बियों द्वारा लगातार सताई जाती रही है और जो धैर्यपूर्वक इन कष्टों को सहन करती रही है। यह सहिष्णु छवि मीरा को आदर्श भारतीय नारी के रूप में प्रतिष्ठित करती है। ऐसा प्रयास बाद में भी लगातार किया जाता रहा है, जहाँ मीरा उच्च हिन्दू जीवन मूल्यों का प्रतिनिधित्व करती है। ऐसे ग्रन्थों में मीरा की विद्रोही छवि नहीं मिलती। यह कार्य हिन्दी में प्रगतिशील आलोचना ने किया है।

17.4 हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में मीरा

आधुनिक काल में जब हिन्दी साहित्य का इतिहास लेखन प्रारंभ हुआ, तब इन लेखकों का ध्यान मीरा पर भी गया। इन्होंने मीरा की अनदेखी नहीं की, हालाँकि उतनी गंभीरता से भी मीरा पर विचार नहीं किया गया, जितना अपेक्षित था। सबसे पहले "हिन्दुई साहित्य का इतिहास" में गार्सा द तासी ने मीरा का परिचय दिया। यह परिचय मुख्यतः कर्नल टॉड के आधार पर दिया गया था। तासी ने लिखा - "हिन्दुओं का मत है कि उनकी काव्य रचनाओं की समता उनका समकालीन कोई दूसरा कवि नहीं कर सका। लोग उन्हें "गीत गोविंद" की "टीका" की रचयिता कहते हैं। इस कविता के साथ उनके कुछ पद, कान्हा (कृष्ण) की भक्ति में भजन हैं जो जयदेव के मूल संस्कृत की तुलना में रखे जा सकते हैं। ये पद तथा कृष्ण के आध्यात्मिक सौन्दर्य का वर्णन करने वाले अन्य गीत अत्यन्त भावुकतापूर्ण हैं। कहा जा सकता है कि मीरा ने सब कुछ त्याग दिया था और कृष्ण से संबंधित पवित्र स्थानों की, जहाँ वे दिव्य अप्सराओं के अनुकरण पर, उनकी मूर्ति के सामने, रहस्यपूर्ण "रास मण्डल" नृत्य किया करती थीं, यात्रा करने में जीवन व्यतीत किया।"

मीरा के बारे में इसी तरह की सकारात्मक टिप्पणी ग्रियर्सन और मिश्र बन्धुओं ने भी की। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने प्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थ में मीरा की कविता की प्रभावशीलता पर ऐसी ही संक्षिप्त टिप्पणी की है। "ये प्रायः मंदिर में जाकर उपस्थित भक्तों और संतों के बीच श्रीकृष्ण भगवान की मूर्ति के सामने आनन्दमग्न होकर नाचती और गाती थीं। कहते हैं कि इनके इस राजकुल विरुद्ध आचरण से इनके स्वजन लोकनिंदा के भय से रुष्ट रहा करते थे। यहाँ तक कहा जाता है कि इन्हें कई बार विष देने का प्रयत्न किया गया, पर भगवत् कृपा से विष का कोई प्रभाव इन पर न हुआ। घरवालों के व्यवहार से खिन्न होकर वे द्वारका और वृंदावन के मंदिरों में घूम-घूमकर भजन सुनाया करती थीं। जहाँ जातीं, वहाँ इनका देवियों का सा सम्मान होता।" आगे शुक्ल जी ने लिखा , "मीराबाई का नाम भारत के प्रधान भक्तों में है और इनका गुणगान नाभाजी, ध्रुवदास, व्यासजी, मलूकदास आदि सब भक्तों ने किया है। इनके कुछ पद तो राजस्थानी मिश्रित भाषा में है और कुछ विशुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा में, पर सबमें प्रेम की तल्लीनता समान रूप से पाई जाती है।" इसी परंपरा में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी मीरा के कृतित्व और व्यक्तित्व पर पूर्व परिचित संक्षिप्त टिप्पणी की है। द्विवेदी जी ने "हिन्दी साहित्य की भूमिका" में लिखा है - "इन इतिहास ग्रन्थों में मीरा की रचना शीलता का विस्तृत परिचय नहीं मिलता। "

17.5 प्रामाणिक पाठ की खोज

मीरा के जीवन की तथ्यात्मक जानकारी लेने के पश्चात् दूसरा सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि दरहसल मीरा की रचनाएँ कौन सी हैं? कौन से ऐसे पद हैं जिनकी रचना मीरा ने की है? कहीं ऐसा तो नहीं है कि कुछ उत्साही मीरा भक्तों ने मीरा के नाम से अपने अनुभवों को व्यक्त करने वाले पद मीरा के नाम से चला दिए हों। इस दृष्टि से मीरा पदावली का संकलन और संपादन महत्वपूर्ण कार्य है। हिन्दी के कई विद्वानों ने इस दृष्टि से महत्वपूर्ण कार्य किया है। मीरा के पदों के इन संग्रहों को जान लेना आपके लिए उपयोगी रहेगा। अब तक उपलब्ध संग्रहों में श्री हरिनारायण पुरोहित द्वारा संपादित "मीरा वृहत्पदावली", भाग 1 को सर्वाधिक प्रतिष्ठा प्राप्त है।

मीरा की रचनाओं के प्रमुख संग्रह निम्नलिखित माने जाते हैं -

1. मीरा वृहत्पदावली भाग-1 सं. श्री हरिनारायण पुरोहित
2. मीरा वृहत्पदावली भाग-2 सं. डॉ. कल्याण सिंह शेखावत
3. मीरा मंदाकिनी - नरोत्तम स्वामी
4. मीरा माधुरी - ब्रजरत्नदास
5. मीरा, सहजो और दयाबाई - वियोगी हरि
6. मीरा पदावली - परशुराम चतुर्वेदी
7. मीरा बृहद् पद संग्रह - पद्मावती शबनम
8. मीरा पदावली - शंभु सिंह मनोहर

17.6 मीरा का सम्प्रदाय

मीरा के जीवन और साहित्य पर चर्चा करने से पूर्व एक अन्य बिन्दु पर चर्चा कर लेना उपयोगी होगा। प्रश्न यह है कि मीरा का कोई पंथ या सम्प्रदाय क्यों नहीं बना। भक्तिकाल से लगभग सभी कवियों के पंथ, मठ या सम्प्रदाय बने हुए हैं। कबीर पंथ, दादू पंथ बना। सिक्ख धर्म की स्थापना हुई। तुलसीदास, सूरदास के अपने मठ हैं। परन्तु मीरा का कोई मठ या पंथ नहीं है। यहाँ ध्यान में रखने की बात है कि जिन भक्तों ने पंथ और सम्प्रदाय का विरोध किया, उन कबीर और दादू के भी पंथ बने। मीरा इनसे कैसे बची रही, इस पर हिंदी आलोचना में विचार हुआ है। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी ने लिखा कि मीरा अत्यंत उदार थीं।"हिंदी में शायद ही कोई और रचनाकार मिले जो इस क्षेत्र में मीरा से अधिक उदार हो।" उनकी कविता पर निर्गुण, सगुण, सूफीमत, नाथ पंथ -सबका प्रभाव दिखाई देता है। इस तरह उनपर "सभी मतवादों का प्रभाव" है। इसके अलावा दूसरी सबसे बड़ी बात यह है कि मीरा "किसी मतवाद पर आक्रमण नहीं करती। यह अनाक्रमण धार्मिक कवियों में बहुत कम है। सुनने में चाहे जैसा लगे लेकिन सच यह है कि मध्यकालीन धर्मसाधक कवि अपने मत का प्रचार और विरोधी मत या मतों पर प्रहार करने में ढील या लिहाज नहीं बरतते।" परन्तु मीरा इन सबसे अलग थी। "वह घर की चारदीवारी तोड़कर बाहर निकली थीं तो किसी प्रकार की संकीर्णता में बंधना उनके लिए स्वाभाविक नहीं था।"

यहाँ मीरा के जीवन के एक प्रसंग का जिक्र करना उपयोगी होगा। मीरा कृष्ण भक्त थीं। वैष्णव परंपरा में थीं। उनका विवाह हुआ। वह ससुराल गईं। उनका ससुराल शक्ति का उपासक था। आप पाठ्यक्रम के पहले खण्ड में भी यह पढ़ चुके हैं कि "भक्तमाल" के अनुसार मीरा की सास ने मीरा को देवी पूजन का निर्देश दिया। मीरा जी ने कहा -"मेरा यह मस्तक तो गिरधारीलाल के हाथों बिक चुका है; यह अन्य किसी देवी-देवता के सामने नहीं झुकेगा। इसे तो केवल उन्हीं के चरणों में प्रणाम करने की कामना रहती है।" सास बोली -"देवी की पूजा करने से स्त्री का सौभाग्य बढ़ता है, इसलिए हठ न करो; अपना सिर देवी के चरणों में झुकाकर प्रणाम करो।" उत्तर में मीराजी ने बार-बार यही कहा - "आप इसे निश्चय करके मान लीजिए कि उस सुकुमार श्यामसुंदर के चरणों पर एक बार झुककर यह और किसी के सामने नहीं झुकेगा।" मीरा का यह व्यवहार डॉ. त्रिपाठी के विश्लेषण से मेल नहीं खाता। अपनी मान्यताओं के आगे मीरा भी हठीली ही थी।

मधु किश्वर और रूथ वनिता ने इस प्रश्न पर स्त्रीवादी दृष्टि से विचार किया। उनका मानना है कि मीरा ही नहीं, वरन् किसी भी स्त्री भक्तों का कोई सम्प्रदाय नहीं बना, यहाँ

तक कि आण्डाल, अक्का महादेवी, लल्लद्य किसी की भी कहीं कोई समाधि नहीं है। सब स्त्री भक्त मीरा की तरह "अदृश्य" हो गई। "घर से बाहर निकली मीरा स्वतः समाज से भी बहिष्कृत हो जाती है।" घर से बाहर निकलना हमारे समाज का कभी भी अनुकरणीय आदर्श नहीं बना। "मीरा को न केवल असामान्य जीवन जीना पड़ा, कई यातनाओं (जहर का प्याला, सांप, कांटों की सेज इनके नाटकीय प्रतीक हैं) से गुजरकर अपनी असाधारणता को भी सिद्ध करना पड़ा। इस तरह खुद को सिद्ध कर, साहस कर, सारी बाधाओं को पार कर वह मान-सम्मान पा सकी हैं। स्त्रियोचित मूल्यों को लाँघने से उन्होंने जितनी मान-प्रतिष्ठा खोई उससे ज्यादा उन्हें मिली है। अब तो उन्हें सारे मूल्यों से ऊपर माना जाता है। लेकिन सामान्य से बहुत दूर रहकर जीने के लिए विवश मीरा इसी कारण एक सहज अनुकरणीय आदर्श नहीं बन पाती है। वह कुल मिलाकर "अनूठी" ही रह जाती है।" और यही कारण है कि उनका कोई संप्रदाय नहीं बना।

मीरा के अपने काल में मीरा के बारे में दो परस्पर विरोधी मत मिलते है। कुछ लोगों का विचार था कि मीरा परंपरा को तोड़ने वाली, मर्यादा भंग करने वाली कुलनाशिनी स्त्री है। मीरा के जीवन व्यवहार के कारण उसके पीहर और ससुराल दोनों की बदनामी हो रही है। ऐसी मीरा मर जाए तो ही अच्छा है। वह अच्छी स्त्री नहीं है। अच्छी पत्नी, अच्छी बहू और अच्छी बहिन-बेटी की तो बात ही दूर है। उसने अपने लिए जीवन के जो मानदंड स्थिर किए हैं, वे मानदंड समाज को स्वीकार्य नहीं हैं। मीरा के प्रभाव में आकर अन्य स्त्रियों के भी बिगड़ने का खतरा है। मीरा में अपने पदों में स्वयं ही अपने बारे में प्रचारित इस छवि को प्रस्तुत किया है। जाहिर है कि ये बातें शालीन भाषा में कही जा रही हैं। यदि कोई गाली देना चाहे तो उसे बिगड़ैल, चरित्रहीन आदि कह सकता है। किसी किसी ने झौंक में आकर उसे "वेश्या" भी कहा है। जो लोग मीरा के सम्पर्क में आते हैं, उनका आतिथ्य करते हैं या उनका आतिथ्य स्वीकार करते हैं उनका सामाजिक बहिष्कार किया जाता है। इस समझ के राजपूत परिवारों में आगे आने वाली कई पीढ़ियों तक अपनी बेटियों का नाम मीरा नहीं रखा गया।

राजा बरजै राणी बरजै, बरजै सब परिवारी।
कुंवर पाटवी सो भी बरजै, और सहेल्यां सारी।।
XXX XXX
साधुन के संग बैठ बैठ के, लाज गमाई सारी।
नित प्रति उठि नींच घर जावो, कुलकूँ लगावो गारी।।

ऐसे आरोप तो मीरा ने सुने हैं। सुनकर इन्हें स्वीकार कर लिया है। इन पर मीरा कोई बहस नहीं करती। इस स्वीकार में जबर्दस्त अस्वीकार भाव छिपा हुआ है, और यही मीरा की कला है।

जो लोग इस मत के समर्थक नहीं थे, वे इन बातों को नगण्य मानते थे। कुल मर्यादा, सामाजिक मान्यताएँ इतनी बड़ी नहीं हैं, जितनी बड़ी मीरा हैं। मीरा कृष्ण भक्त है, निडर है, साहसी है, सच्ची है। जो सोचती है, वही बोलती है। जो बोलती है, वही करती है। ईश्वर प्रेम के सामने ये सामाजिक मर्यादाएँ नगण्य है। यदि ध्यान से देखा जाए, तो इस मत को मानने वाले भी आम लोगों के लिए पहले मत का समर्थन ही करते हैं। परन्तु मीरा अनूठी है। उस पर यह लादा नहीं जा सकता। अतः वह क्षम्य ही नहीं वरेण्य भी है। इस तरह वैचारिक मान्यताओं के टकराव को बचाकर मीरा का समर्थन किया गया है, क्योंकि मीरा तो "बावली" है, कृष्ण के प्रेम में पगली है। उस पर क्या क्रोध करना! भक्तमाल, वैष्णवों की वार्ता, कर्नल टॉड, ग्रियर्सन, मिश्रबंधु और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तक के लेखन में मीरा की ये दोनों छवियाँ साथ-साथ, एक दूसरे के विरुद्ध खड़ी हैं।

परिता मुक्ता, अपने अध्ययन का सार प्रस्तुत करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँची है कि मीरा ने अपना समाज तो बनाया है, लेकिन वह संगठित सम्प्रदाय नहीं बन सका। कृष्ण भक्त के रूप में मीरा बल्लभ सम्प्रदाय और चैतन्य सम्प्रदाय से दूरी बनाए रखती है। इस तरह साम्प्रदायिक दृष्टि से भी मीरा अपने युग में अकेली ही है।

17.7 मीरा की कविता में 'जोगी'

मीरा के आलोचकों के बीच एक विवाद बराबर बना हुआ है और यह विवाद आधुनिक काल में आया है। मीरा जिस परम प्रिय प्रेमी का जिक्र करती है, वह कौन है? क्या वह कृष्ण है, जो अलौकिक है? मीरा की कविता संबोधित कविता है। वह अपनी बात किसी को कहती है। उसका आत्मनिवेदन भी स्वगत नहीं है। मीरा किसी "जोगी" का जिक्र करती है। उनके कई पद इस जोगी को संबोधित है। क्या इस जोगी का कोई लौकिक संदर्भ है, या वह भी "गिरधर नागर" का ही एक अलौकिक रूप है?

श्रीमती पद्मावती शबनम ने कहा "मीरा ने अपने आराध्य को बार-बार जोगी नाम से ही संबोधित किया है। मीरा के जोगी की वेशभूषा भी नाथ परम्परानुसार ही है। पदाभिव्यक्तियों के आधार पर यह सुस्पष्ट हो उठता है कि मीरा के ये आराध्य नाथ परम्परानुसार वेशभूषा से विभूक्ति नाथ-परम्परानुकूल जोगी-कर्म में रत है।"

डॉ. सावित्री सिन्हा ने लिखा - "मीरा के आराध्य का दूसरा निर्गुण पंथी रूप पूर्णतया लौकिक है। जिस जोगी के प्रेम में वह व्याकुल है वह एक साधारण जोगी है, जो उसके मन में प्रेम की अग्नि जलाकर चला गया है। "मीरा काव्य के मर्मज्ञ डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी इस मुद्दे पर असमंजस में हैं। उन्होंने लिखा, "भक्त के लिए प्रियतम भगवान है। इस प्रियतम का रूप मीरा के यहाँ इतना आत्मीय है कि लगता है जैसे प्रेम विषयक उनकी कल्पना ने यथार्थ का रूप धारण कर लिया हो। जो मीरा का इतना आत्मीय हो गया है वह अरूप और निराकार हो भी, तो भी जिन गुणों, स्थितियों का आरोप भगवान पर किया गया है, वह किसी परिचित व्यक्तित्व का ही होना चाहिए। संभावना इसी बात की है कि या तो यह परिचित व्यक्तित्व उदारी कृत होकर भगवान के रूप में पर्यवसित हो गया है या भगवान पर ही उसके गुणों का आरोप कर दिया गया है।"

स्त्रीवादी दृष्टि से मीरा पर विचार करते हुए अनुराधा ने लिखा - "मीरा का प्रेम किसी ऐसे व्यक्ति से किया गया प्रेम है जो राजसत्ता के दबाव के प्रतिरोध की क्षमता के अभाव में जोगी हो जाता हैं। यह लौकिकता सतीत्व के खिलाफ भी है और सामंती सत्ता के खिलाफ भी। गिरधर गोपाल की मीरा की खोज वास्तव में उसी जोगी रूप की खोज है।"

यदि यह मान लिया जाए, तो इससे मीरा की कविता को इस ढंग से समझा जा सकता है कि मीरा की कविता स्त्री के मुद्दों की "तीखी टीस" की कविता है। मीरा की कविता में उतनी स्पष्टवादिता नहीं है। उसमें "कहने और छुपा लेने का गहरा तनाव" है, कि उनकी कविता "कुचले हुए सपने वाली स्त्री की कहानी" है। इस तरह मीरा को पर पुरुष की प्रेमिका सिद्ध कर दिया जाता है।

इसके पीछे दृष्टि यह है कि विधवा होते हुए भी मीरा को किसी पर-पुरुष से प्रेम करने का अधिकार तो है ही। इसमें कोई गलत बात नहीं है। जो लोग इन बातों को नहीं मानते वे मीरा की छवि को बचाने का बहाना बनाकर अलौकिकता के सहारे यौनशुचिता के पुरुषवादी मंतव्यों को पुष्ट करते हैं। इसके लिए मीरा की कविता के विश्लेषण के ढेरों तर्क मौजूद है।

मीरा के प्रारंभिक समर्थक इन लेखिकाओं के मंतव्यों से सहमत नहीं है। यदि यह बात सही होती तो मीरा को वह जन समर्थन नहीं मिला होता, जो उनके जीवन में उन्हें मिला। यहाँ तक कि मीरा के मन में एक अपराध बोध आ जाता। परंतु हम देखते हैं कि मीरा की कविता में वह कपट, या छल या झूठ कहीं नहीं है, जो पर-पुरुष से प्रेम करने के कारण उसमें आ ही जाता । और यदि ऐसा होता तो राणा को मीरा की हत्या करने में तनिक भी संकोच नहीं होता। इसी संकोच के कारण राणा ने जहर का प्याला भेजा, या पिटारी में साँप भेजा। उसे अप्रत्यक्ष प्रयास करने की जरूरत नहीं पड़ती। फिर सबसे बड़ी बात कि वह अपने पीहर में भी सम्मानित नहीं रहती। पीहर वाले भी उसे मारने में आगे आते।

दरअसल मीरा की कविता के बारे में जिसने भी लिखा, उनके जीवन और व्यक्तित्व पर भी टिप्पणी की ही है। इस मामले में भी मीरा हिंदी के अन्य सभी कवियों से अलग है। उनकी कविता और जीवन में भेद नहीं है। आमतौर से आलोचक कवि और व्यक्ति के बारे में अलग-अलग चर्चा करते हैं, परंतु मीरा उन्हें यह अवसर नहीं देती। उनके काव्य का विश्लेषण करने वाले उनके व्यक्तित्व की ऐसी "छवि" भी बनाते चलते हैं जो उनके काव्य-विश्लेषण से मेल खाती हो। यह कार्य प्रगतिवादी आलोचक डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी और मैनेजर पाण्डेय ने भी किया है। स्त्री विमर्श की समर्थक लेखिकाएँ भी कर रही हैं और उसे आध्यात्मिक, भक्तिन, रहस्यवादी मानने वालों ने भी किया है। यह शायद आलोचना की मजबूरी है या मीरा की कविता की विशेषता है कि आप इन दोनों के विश्लेषण से बच नहीं सकते। खंडित दृष्टि से मीरा पर विचार नहीं हो सकता। उसे समग्रता में ही देखना होगा।

इसके अलावा एक दिक्कत और भी है। मीरा के व्यक्तित्व और कृतित्व में परस्पर विरोधी छवियों में ढलने की संभावना है। यह संभावना मीरा के बारे में व्यक्त की गई समझ को छोटा व अपर्याप्त सिद्ध कर देती है। यह मीरा के जन्म के साथ ही जुड़ा हुआ है। आलोचक मीरा के एक पक्ष का समर्थन करने के लिए विवश या अभिशप्त हो जाता है।

मीरा के ससुराल वालों ने कहा कि मीरा मर्यादाहीन, स्त्री धर्म का उल्लंघन करने वाली, बिगड़ी हुई, सामाजिक मान्यताओं को तोड़ने वाली स्त्री है। वह सामान्य स्त्री नहीं है। वह असामान्य है। अतः वह सामान्य घर में कैसे रह सकती है? वह ऐसी स्त्री है जो समझ में नहीं आती। समझाना चाहते हैं तो समझती ही नहीं। पूछना चाहते हैं तो बताती ही नहीं। बताती है तो कुछ पता ही नहीं चलता। मारना चाहते हैं तो मरती ही नहीं। लड़ना चाहते हैं तो वह लड़ती ही नहीं। हम उस पर जो आरोप लगाते हैं, उन्हें मान लेती है, प्रतिकार ही नहीं करती। यह हताशा राणा के कर्मों में अभिव्यक्त होती है। इसलिए वह मीरा पर निर्णायक वार नहीं कर पाता। विवश हो जाता है और मीरा बच जाती है।

मीरा के अपने युग में मीरा के चरित्र पर जो आरोप लगाए गए थे, मीरा के समर्थक जन-समाज ने उन आरोपों को अमान्य सिद्ध कर दिया। मीरा "बावली" है, पगली है, नासमझ है, दुनियादारी के हिसाब से ठीक नहीं कर रही, परंतु वह भक्तिन है, रहस्यवादी है, आलौकिक है। वह पापिनी नहीं है, कुलटा नहीं है, चरित्रहीन नहीं है। मीरा किसी "जोगी" से प्रेम करती है, इसलिए वह गलत है, यह स्पष्ट आरोप राणा ने नहीं लगाया। समाज मानता रहा है कि मीरा का चरित्र निष्कलुष है। विरोधी और समर्थक दोनों इस बिन्दु पर सहमत थे। यदि मीरा किसी अन्य पुरुष से प्रेम करती होती, तो सारे समर्थक चले जाते। जैसी मीरा की छवि है, यदि वह प्रेम करती तो ताल ठोककर कहती। डरती नहीं। इतिहास की गति का विचित्र विरोधामास है कि जो स्त्री लेखन, मीरा में अपनी परंपरा ढूँढ़ रहा है, वह मीरा के बारे में "राणा" के मत के करीब खड़ा है। यहाँ तक कि उससे दो कदम आगे है। यदि हम राणा के आरोपों का बारीक विश्लेषण करें, तो राणा ने यह कहीं नहीं कहा कि वह अन्य पुरुष के प्रेम में पड़ी हुई है।

मीरा के लौकिक प्रेम की चर्चा करते हुए मीरा के जीवन के दो प्रकरणों की पड़ताल फिर से करनी चाहिए। भक्तमाल में वर्णित कथा के अनुसार एक साधु ने यह कहा कि कृष्ण से ऐसा निर्देश मिला है कि वह मीरा को रति सुख प्रदान करे। मीरा ने लज्जित होने के बजाय इस बात को सार्वजनिक कर दिया और संतों के बीच बिस्तर बिछाते हुए उसे आमंत्रित किया। वह साधु लज्जित हुआ और मीरा के चरणों में गिर पड़ा। इस नैतिक साहस के स्रोत पर भी विचार करना चाहिए।

इसी तरह मीरा एक बार वृन्दावन गई और वहाँ जीवगोस्वामी से मिलने गई। जीवगोस्वामी ने यह प्रतिज्ञा कर रखी थी कि कभी किसी स्त्री का मुँह नहीं देखेंगे। इसी आधार पर मीरा को सूचित कर दिया गया कि आप स्वामी जी से नहीं मिल सकतीं। मीरा ने तत्काल उत्तर दिया कि मेरी दृष्टि में तो वृन्दावन में सिर्फ एक ही पुरुष है, वह कृष्ण है। यह दूसरा "पुरुष" कहाँ से आ गया? इस फटकार से परास्त होकर जीवगोस्वामी बाहर आए और मीरा को आदरपूर्वक अपने आश्रम में ले गए। मीरा जिस दृष्टि भेद को अमान्य करती है, वह लिंग भेद के स्थान पर, स्त्री और पुरुष के स्थान पर एक सहज मनुष्य की दृष्टि से मानवीय संबंधों की वकालत करती है, वह दृष्टि इस तथाकथित लौकिक प्रेम की अनुमति नहीं देती। जो पुरुष किसी स्त्री को स्त्री के रूप में देखता है, मनुष्य के रूप में नहीं देखता, उस पुरुष दृष्टि का मीरा समर्थन नहीं करती। जिसका तात्पर्य यह है कि ऐसा व्यक्ति भीतर से कमजोर है। स्त्री से प्रभावित हो सकता है। उससे मिलकर काम भाव से ग्रसित हो सकता है। अपने बिगड़ जाने की आशंका से जो व्यक्ति स्त्री से कोई सामाजिक, सांस्कृतिक संपर्क नहीं रखता, ऐसे व्यक्तियों के छद्म स्त्री विरोध में स्त्रियों के लिए कितना आकर्षण छिपा हुआ है। मीरा के एक ही प्रश्न से जीवगोस्वामी की यह दृष्टि उजागर हो गई और उन्होंने क्षमा मांगते हुए मीरा को आमंत्रित किया। मीरा को कोई डर-भय नहीं है। वह किसी को पुरुष या स्त्री के रूप में नहीं देखती।

17.8 प्रगतिशील आलोचना में मीरा

मीरा के सामंतवाद विरोधी स्वर को सबसे मुखर रूप में प्रगतिशील आलोचना ने सामने रखा। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी ने अपनी पुस्तक में विस्तार से मीरा के सामंतवाद विरोधी स्वर को उजागर किया है। उन्होंने लिखा - "मूर्ख सिंहासनासीन है -ऐसी सीधी और कटु उक्ति भक्त कवियों में से कम ने की होगी। मीरा को अन्य भक्त कवियों की अपेक्षा सिंहासनासीनों की मूर्खता को अनुभव करने का मौका अधिक निकट से मिला था। उन्होंने इस मूर्ख राजा की मूर्खता प्रत्यक्षतः झेली थी। सिंहासनासीन मूर्ख ही नहीं अन्यायी भी है। उसमें मूर्खता और नीचता का विरल संयोग है।" इस तरह मीरा के पदों का सामंतवाद विरोधी स्वर त्रिपाठीजी उद्घाटित करते हैं। डॉ. मैनेजर पाण्डेय ने लिखा, "मीरा के काव्य में राजसत्ता, पुरुषसत्ता, लोक रूढ़ि और कुलीनता के विरुद्ध विद्रोह का स्वर जैसा प्रखर है, वैसा उस काल के किसी अन्य कवि के यहाँ नहीं है।"

डॉ. रामविलास शर्मा ने मीरा के साहित्य के बारे में कुछ टिप्पणियाँ की हैं, जो आलोचना में मीरा की छवि की दृष्टि से उपयोगी है। मध्यकालीन भारतीय भक्त कवयित्रियों पर टिप्पणी करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा कहते हैं, "जैसे शूद्र को तपस्या का अधिकार नहीं था, वैसे ही स्त्री को घर-बार छोड़कर भक्ति करने का अधिकार नहीं था। समाज में ऊँच-नीच का भेद न मानने वाले भक्तों को विरोध का सामना करना पड़ा। उन भक्तों में यदि कोई स्त्री हो तो उसे जिस तरह के विरोध का सामना करना पड़ा होगा, हम उसकी कल्पना कर सकते हैं।"

मीरा के जीवन-संघर्ष पर टिप्पणी करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा मीरा को ऐसी "आत्म जयी मीरा" कहते हैं जिसने "अकेले ही राणा की सेना पर विजय" प्राप्त कर ली। सास ने उन्हें कुलनासी कहा हो चाहे न कहा हो और राणा जी ने जहर का प्याला भेजा हो चाहे न भेजा हो, जनता ने मीरा को इसी रूप में अपनाया। वह उन्हें समाज और परिवार के विरोध पर विजय पाते हुए देखती हैं। मीरा के पद एक काव्य-परंपरा का प्रतिनिधित्व करते हैं जिसमें नारी के उल्लास, स्वाधीन और सुखी जीवन बिताने की आकांक्षा व्यक्त हुई है।

यही नहीं, "मीरा के गीत लोक संस्कृति का अंग बन गए और स्वयं मीरा लोक साहित्यकारों को प्रेरित करने वाली वीर नारी बन गई।"

इस विश्लेषण को अलग ढंग से व्याख्यायित करती हुई कवयित्री अनामिका ने लिखा - "कृष्ण के महिमा वर्णन के बहाने उन्होंने अपने देवर के षड्यन्त्रों का भी खुलासा हंसते-हंसते कर दिया है - भाभी सुलभ सरस चुटकी संग : राणाजी ने भेजा विष का प्याला, पी गई मीरा हांसी रे। भक्ति की उदात्तता पर प्रश्न चिन्ह नहीं लगा रही, न यह कह रही हूँ कि एक बुद्धिमती स्त्री का यह महीन प्रतिशोध एक रणनीति की तरह उभरा होगा, पर इतना तो इससे पितृसत्ताकों को संदेश लेना ही चाहिए कि स्त्री के अवचेतन पर चोट न करें। चोट होगी तो कहीं न कहीं उसकी टंकार भी होगी जो दिग्गंत में डंके की चोट पर फैलेगी। आप सदियों बाद भी मुँह दिखाने लायक न रहेंगे।"

"मीरा का मर्म" लेख में डॉ. रामबक्ष ने दो प्रश्नों पर विचार किया। पहला प्रश्न तो यह है कि इतने विद्रोह और विरोध के बावजूद उस सामंतशाही युग में मीरा जीवित कैसे बची? जो राज्य किसी भी मनुष्य की हत्या में हिचकिचाता नहीं, उसने मीरा को जीवित क्यों रखा। मीरा ने कहा मैं पर्दा नहीं करूँगी। ज्ञानी पुरुषों से सत्संग करूँगी। मंदिर में नाचूंगी। मैं तुम्हारी लोक मर्यादा को नहीं मानती। सारे नगर में मीरा की और चितौड़ के राजपरिवार की थुह-थुह हो रही है। राणा सब सुन रहा है, क्रोधित हो रहा है। फिर भी मीरा जीवित बची। "सब जानते हैं कि मीरा तो बावली है, कृष्ण के प्रेम में पागल है। दीवानी है। अब इस लोक व्यवहार से नादान, पगली को मारना पाप है। घोर पाप है। मीरा विद्रोही नहीं थी। विद्रोही होती तो निश्चित मार दी जाती। परन्तु लोग बावरों की, पागलों की, दीवानों की हरकतों को सहन कर जाते हैं। उन्हें मारते नहीं।, यह मध्यकाल का राजस्थान है। चितौड़ के राजपरिवार ने मीरा के जीवन से होने वाले अपने अपमान को, मर्यादा भंग को झेला, सहन किया। कितना विशाल हृदय रहा होगा उस राजपरिवार के भीतर। राणा को भी क्रोध आता था और बहुत आता था, परन्तु उस क्रोध को शांत करने वाले लोग भी उसी राजपरिवार में रहते थे और गुस्सैल राणा उनकी बात मान लेता था। इस तरह मीरा को क्षमा और बिना मांगे जीवनदान मिल जाता था।"

यदि उनकी कविता देखें, तो कविता में मीरा राणा को खल पात्र नहीं बताती। वह क्रोधी तो है, परन्तु मीरा की नजर में नादान है। इसलिए मीरा उसके अत्याचारों को हंसकर टाल देती है। गंभीरता से उसे नहीं लेती। फिर दूसरा प्रश्न यह उठता है कि मीरा आखिर चाहती क्या है? मीरा भजन करती है, सत्संग करती है, मन चाहा करती है, देशाटन करती है। वह सब करती है, फिर भी वह दुःखी क्यों है? "यदि मीरा की कविता को बारीकी से पढ़ा जाए तो हमें पता चलता है कि मीरा अपनी इन मांगों को कभी गंभीरता से नहीं लेती। यह उसकी चिंता नहीं है। उसका दर्द यह नहीं है। कौन विरोध कर रहा है? कौन समर्थन कर रहा है? कौन प्रेम के वशीभूत होकर समझा रहा है? कौन मुझसे चिढ़ रहा है? यह महत्वपूर्ण नहीं है। मेरी सबसे बड़ी चिंता यह है कि कोई मेरे दर्द को समझ नहीं रहा है। जो मित्र है, शुभ चिंतक है, वह भी नहीं समझ रहा है और जो विरोधी है, वह भी बिना जाने -समझे विरोध कर रहा है। इसलिए दोनों नादान हैं और इसलिए क्षम्य हैं। मीरा के

पदों में बार-बार गूंजता रहता है कि "हेरी मैं तो दरद दीवाणी, म्हारो दरद न जाणे कोय।" सम्यक् संप्रेषण के अभाव का दर्द मीरा का अपना दर्द है।

17.9 दलित समाज और मीरा

हिंदी में दलित चेतना के उदय के साथ मीरा के दलित संपर्कों का भी विश्लेषण-मूल्यांकन हुआ है। मीरा ऊँच-नीच की जातिवादी मर्यादा को नहीं मानती थीं, इस कारण राजपरिवार मीरा से नाराज रहा था। कुछ लोगों का विचार है कि मीरा रैदास की शिष्या थीं। यदि शिष्या न भी थीं, तब भी रैदास के प्रति उनके मन में आदर का भाव तो था ही। दलित और स्त्री की पीड़ा को एक साथ रखते हुए आलोचकों ने मीरा के उदार दृष्टिकोण की तारीफ ही की है।

इस दृष्टि से परिता मुक्ता का अध्ययन बहुत महत्वपूर्ण है। उन्होंने कहा कि मीरा द्वारा राजपरिवार का त्याग और दलित और पिछड़े समाजों द्वारा मीरा का स्वीकार से उत्पन्न तनाव राजस्थान के सांस्कृतिक इतिहास का महत्वपूर्ण संदर्भ है। उन्होंने यह प्रश्न भी उठाया कि आखिर मीरा लोक स्मृति में बची कैसे रही? सिसोदिया राणा और उसके समर्थक युगों तक मीरा की स्मृति को विलुप्त करने के तमाम प्रयत्न करते आ रहे थे और यह प्रक्रिया आज भी जारी है। स्थापित धार्मिक सम्प्रदायों ने भी मीरा को कभी स्वीकार नहीं किया। तब दलित और कृषक जातियों का समाज आया, जिसने मीरा को अपनाया। स्वयं मीरा ने इस समुदाय का निर्माण किया। इसी शक्तिशाली आधार से मीरा लोक स्मृति में जीवित रही। इन्हीं की भजन संध्याओं में मीरा के भजन गाए जाते रहे और उन भजनों के सामंत विरोधी स्वर की गूँजें इस समाज को मोहित करती रही।

मीरा रैदास की शिष्या थी या नहीं थी? इस पर बहस हो सकती है, परन्तु यह समाज इस पर विश्वास करता है क्योंकि इस गुरु-शिष्या संबंध से जाति, वर्ग और जबरन विवाह के बंधन पर चोट पड़ती है। मीरा का संबंध जन्म से मेड़ता और विवाह-बंधन से मेवाड़ राजघराने से रहा है। मीरा जब इनका तिरस्कार करती है, तो इससे मेवाड़ के राजघराने के गर्व पर चोट पड़ती है। मीरा उनके कायराना षड्यंत्र से जिंदा बच गई, महल की चारदीवारी से बाहर हो गई, इससे उनकी इज्जत पर बट्टा तो लगता ही है। जाहिर है कि सामंती समाज में इज्जत पर बट्टा लगना मृत्यु के समान है।

मीरा राणा से घृणा करती हो या उसे दयनीय या क्षम्य मानती हो, परन्तु वह उसकी सत्ता का सम्मान नहीं करती। वह उसकी राजनीतिक सत्ता, पितृसत्तात्मक सत्ता और नैतिक सत्ता की अवज्ञा करती है। इस अवज्ञा से दलित और कृषक जातियाँ सहमत होती हैं। मीरा की स्वीकृति में गीत गाती हैं। इस तरह परिता मुक्ता के अनुसार मीरा ऐसे सम्मिलित समाज की आवाज बन जाती है, जो आपसी सहयोग और सद्भाव पर जीता है।

परिता मुक्ता का कथन है कि भारत में समाज का निर्माण सामान्यतः जन्म से, जाति से बनता है। परन्तु कभी-कभी अलग तरह से भी समाज बनता है। यह समाज अपनी रुचि, चयन और विश्वास से बनता है, विचारधारा से बनता है। यह समाज मीरा ने अपनी रचनाओं से बनाया। यह समाज स्वीकृत समाज के बहिष्कृत लोगों को शरण देता है। इसी समाज ने मीरा को अपनाया।

मीरा का भजन गाते हुए दलित जातियों, जाटों, पटेलों, कुम्हारों और मालियों को लगता है कि वे मेवाड़ी राणा पर फब्तियाँ कस रहे हैं। उस पर नैतिक टिप्पणी करने के हकदार हो गए हैं। उन्हें अपमानित करने का सुख ले रहे हैं, जो युगों से उन्हें अपमानित किए

हुए है। मीरा का भेष धारण करना सिर्फ गरीबी को अंगीकार करना नहीं है, गरीबों को भी अंगीकार करना है। रैदास को गुरु स्वीकार करना जाति व्यवस्था पर टिप्पणी है। जबर्दस्ती विवाह बंधन का विरोध करने वाली मीरा वैयक्तिक स्वतंत्रता के पक्ष में खड़ी हो जाती है, जो आधुनिक मनोवृत्ति है।

दलित आलोचक डॉ. धर्मवीर ने मीरा के बहाने सवर्ण हिंदू समाज की आलोचना की है। डॉ. धर्मवीर के अनुसार मीरा का काव्य एक विधवा हिंदू औरत का काव्य है। उन्हें कृष्ण भक्ति परंपरा में रखना सही नहीं है। "कृष्ण भक्ति के नाम पर किसी हिंदी समीक्षक ने इस बात को समझने की कोशिश नहीं की कि यह उनकी एक विधवा हिंदू बेटी की पीड़ा है जो पुनर्विवाह में अपना पति मांग रही है। पुरानी समाज व्यवस्था ने और हिंदी समीक्षकों ने मीरा की गोद में कृष्ण की पत्थर की मूर्ति थमाकर हिंदू विधवाओं के पुनर्विवाह की मांग को साढ़े तीन सौ सालों तक ठुकरा दिया। ..... वे विधवा हैं लेकिन पुनः पत्नी और माँ बनना चाहती हैं। कृष्ण भक्ति के नाम में विधवा मीरा की पीड़ा को छिपाया न जाए बल्कि उजागर समझा जाए।" मीरा की कविता को कोई इस आयाम से भी समझ सकता है।

17.10 महात्मा गाँधी और मीरा

मीरा सिर्फ दुःखियारी नारी, रहस्यवादी भक्तिन, भजन गायिका या कवयित्री मात्र ही नहीं है, वह एक राजनीतिक ताकत भी है। इसे स्वाधीनता आन्दोलन के दौर में महात्मा गाँधी ने पहचाना और उसका उपयोग किया। "बावली" मीरा में एक राजनीतिक व्यक्तित्व छिपा हुआ है, गाँधीजी ने इसका उद्घाटन किया। गाँधी जी को मीरा में कई ऐसे गुण दिखाई दिए। उदाहरण के लिए आततायी सत्ता के खिलाफ निर्भय रहना, चाहे कितने ही कष्ट, बाधाएँ और दमन हों, अपने भीतर के सत्य के अनुसार ही आचरण करना, प्रयास पूर्वक साधारण जीवन अंगीकार करना आदि। इसलिए मीरा गाँधी जी की दृष्टि से "महान सत्याग्रही" थी। उन्होंने लिखा कि जैसे प्रकाश और अंधकार एक साथ नहीं रह सकते, जैसे सर्दी और गर्मी साथ-साथ नहीं पड़ती, ऐसे ही न्याय और अन्याय में भी कोई समझौता नहीं हो सकता। प्रह्लाद ने अपने पिता से, मीरा बाई ने अपने पति से और नरसी मेहता ने अपनी सजातीय बन्धुओं से असहयोग किया।

गांधी जी ने मीरा को "महान सत्याग्रही" कहा। मीरा ने राणा से असहयोग किया मीरा ने राणा के सभी कठोर दंड और विषपान भी निर्विकार भाव से स्वीकार किए तथा उनके मन में क्रोध एवं प्रतिकार जैसा कोई भाव उत्पन्न नहीं हुआ। यही असहयोग है। "मीरा बाई ने मार्ग दिखा दिया। जब पत्नी अपने को गलती पर न समझे और जब उसका उद्देश्य अधिक ऊँचा हो, तब उसे पूरा अधिकार है कि वह अपने मन का रास्ता अख्तियार कर ले और नम्रता से परिणाम का सामना करे।" गांधीजी जिस किसी भी स्त्री के आदर्श को ढूँढ़ते हैं तो उन्हें वह सब मीरा में मिलता है। इसलिए जब उन्हें किसी स्त्री का नामकरण करना होता है तो उसे मीरा नाम देते हैं और गांधी जी ने वैसा नाम अपनी अंग्रेज शिष्याओं को दिया है। इस विषय में आप इस खंड की अंतिम इकाई, इकाई–18 में अधिक विस्तार से अध्ययन करेंगे।

17.11 काव्यकला

मीरा के कुछ आलोचकों ने मीरा की भक्ति, प्रेम और रहस्यवाद के साथ-साथ उनकी कला का विवेचन भी किया है। विश्वनाथ त्रिपाठी का मत है - "मीरा की कविता की सबसे

महत्वपूर्ण शिल्पगत विशेषता निरलंकृति है, जिसे आज भी आलोचनात्मक शब्दावली में "सपाट बयानी" कहते हैं। अलंकारों का प्रयोग मीरा के यहाँ मिलता है, किंतु नाम मात्र को। अलंकारों का प्रयोग मीरा काव्य की विशेषता नहीं। स्त्री सुलभ असहायता, प्रेमी की दृढ़ता, अनन्यता एवं पुरुष प्रधान समाज में उनके अबलात्व, इन सबने मिलकर उनकी अभिव्यक्ति को बहुत सीधा और सपाट बना दिया है। इनके सीधे कथन में बेचारगी और निरीहता की हृदयबेधक सरलता है। "अंसुवन जल सींच-सींच प्रेम बेलि बोई।" यह उनकी विशिष्ट अभिव्यक्ति की प्रतिनिधि पंक्ति है। मीरा सीधी-सपाट पंक्तियों में विह्वलता की अभिव्यक्ति करती है। जिन पदों में विरह-व्याकुलता वर्णित-चित्रित की गई है, उनकी प्रथम पंक्ति या टेक ऐसी है मानो वह हृदय में रह नहीं पाई; मीरा ने उसे दबाने , छिपाने की बहुत कोशिश की है, लेकिन वह विवश चीत्कार मनोस्थिति को प्रकट करती हुई बरबस बाहर निकल ही पड़ी है जैसे उसे रोक पाना मीरा के वश में नहीं था। निरलंकृति और संक्षिप्तता इन टेक पंक्तियों का प्राण है।" आगे उन्होंने लिखा -"मीरा की शब्दावली सरल और परिचित है। इस सरलता का उनकी निरीहता से बहुत गहरा संबंध जान पड़ता है। निरीहता की अभिव्यक्ति अलंकृत नहीं होती। उनकी पंक्तियों का सांचा जन बोली का है। पंक्तियाँ गद्यात्मक हैं। उनका गठन ठेठ गद्य का है। "

ध्वनि योजना पर टिप्पणी करते हुए डॉ. त्रिपाठी ने लिखा है - "मीरा की कविता का सौन्दर्य विशिष्ट ध्वनियोजना में भी है। उनकी पंक्तियाँ राजस्थानी की ध्वनि प्रवृत्तियों के अनुकूल हैं, इसीलिए उनमें प्रवाह है। इस प्रवाह में विशिष्ट ध्वनियों का चमत्कार और झनकार है। प्रवाह के कारण उन पंक्तियों की रमणीयता तब आती है जब पंक्तियों की ध्वनियोजना ऐसी हो कि एक ध्वनि से अगली ध्वनि तक जाने में उच्चारण करने में उच्चारण अवयवों को असुविधा न हो। यही नहीं, वे उच्चारण में सहज प्रवृत हो जाएँ। ऐसा तभी होता है जब रचनाकार अपनी बोली की अंतरंगता में पैठा होता है।"

पंकज विष्ट ने लिखा -"मीरा के काव्य की एक विशेषता और है। एक सपाट पद में अचानक एक पंक्ति किसी मणि की तरह जड़ी होती है और जैसे ही आप उसे छूते हैं पूरा पद आलोकित हो उठता है। आप चमत्कृत रह जाते हैं।" कवयित्री अनामिका ने लिखा - "कुल मिलाकर मीरा की कविता प्रेम का उत्सव ही मनाती है, मातम नहीं मनाती। इनके रूठने में या कलपने में भी एक लालित्य है जो स्त्री कविता की विशेषता है। भाषा से अठखेलियां करती चलती अलग-अलग मूड्स और शेड्स की कविता आधुनिक स्त्री-पाठक से भी तादात्म्य कायम करती चलती है क्योंकि अपने "सुन्नमहल" या विराट एकांत में भी यह उस अर्थ में अकेली नहीं जैसे और भक्त कवि हैं। सखियां, माई, जोशी, सास-ननद-देवर, वैद्य, चूड़ियाँ, कंथा, कजरा, घुँघरू, तराजू, कठौता आदि कई घरेलू उपादान और संबोधन अपने पूरे ठाठ के साथ एक नई अर्थ-व्याप्ति में यहाँ खिलते-खुलते हैं। .....अपनी तमाम पुनरावृत्तियों के बावजूद मीरा की कविता एक ठाठदार कविता है -सिर्फ अपनी सांगीतिक वैभव, सान्द्र, भाव-संवेग और उच्छल गीतात्मकता के कारण ही नहीं, बल्कि उस प्यारी-सी हठ धर्मिता के कारण भी जो सीमाएँ लाँघकर निस्सीम हो जाने का सुंदर संकल्प साधे है।"

मीरा की कविता में सिर्फ भजन गायकी ही नहीं है, उन्हें सिर्फ लोक गायकों ने ही नहीं गाया है वह शास्त्रीय संगीतकारों की भी पसंद रही है। प्रसिद्ध गायक वी.डी. पुलस्कर तथा उनके शिष्य ओंकारनाथ ठाकुर ने मीरा के भजन गाकर मीरा के भजनों को शास्त्रीय संगीत की दुनिया में प्रवेश दिलाया। बाद में प्रसिद्ध गायिका एम.एस. शुभलक्ष्मी तथा लता मंगेशकर ने मीरा के भजन गाए। उन पर फिल्में बनीं। रवि रावल और कनुदेसाई जैसे चित्रकारों ने मीरा के चित्र बनाए। अतः कह सकते हैं कि मीरा संस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों में सर्जनात्मक प्रेरणा देती रही है। वह सिर्फ साहित्य तक सीमित नहीं है।

17.12 सारांश

- मीरा हिन्दी की उन कवियों में से एक हैं जिन्हें हिन्दी समाज ने याद रखा है। वह लोक स्मृति में जीवित है।
- मीरा की रचनाओं और उनके व्यक्तित्व पर उनके समकालीन भक्त कवियों ने टिप्पणियाँ की है, जिनमें नाभादास प्रमुख हैं।
- इसके पश्चात् राजस्थान के इतिहास लेखकों ने मीरा के जीवन वृत्त को सामने रखने का प्रयास किया।
- हिन्दी साहित्य के प्रारंभिक इतिहास लेखकों ने भी मीरा का उल्लेख किया है।
- कुछ विद्वानों ने मीरा के प्रामाणिक पाठ का संपादन किया है जिनके कारण मीरा की रचनाएँ आज हमारे सामने उपलब्ध हैं।
- आलोचकों ने मीरा की कविता और जीवन के अन्तः सम्बन्धों का विश्लेषण किया है। मीरा के सम्प्रदाय और मीरा की कविता में व्यक्त "जोगी" की लौकिकता का भी प्रश्न उठाया है।
- प्रगतिशील आलोचना ने मीरा की कविता में व्यक्त सामंत विरोधी मूल्यों को रेखांकित किया तथा उनके विद्रोही व्यक्तित्व को उद्घाटित किया।
- मीरा के रैदास से रिश्ते के सवाल पर भी आलोचकों ने विचार किया है।
- महात्मा गांधी ने मीरा में एक सत्याग्रही व्यक्तित्व की खोज की ।
- आलोचकों ने मीरा की काव्य कला का भी विश्लेषण किया है ।

17.13 अभ्यास प्रश्न

1. इतिहासकारों ने अपने ग्रंथों में मीरा का उल्लेख किस प्रकार किया है। विवेचन कीजिए।
2. हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में वर्णित 'मीरा' का विश्लेषण कीजिए।
3. मीरा की कविता में 'जोगी' के स्वरूप पर विचार कीजिए।
4. प्रगतिशील आलोचना में मीरा को किस प्रकार व्याख्यायित किया गया है? सप्रमाण उत्तर दीजिए।
5. मीरा को काव्य कला के विविध पक्षों पर विचार कीजिए।

इकाई 18 मीरा की प्रासंगिकता

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 वर्तमान में अतीत की प्रासंगिकता का अर्थ

18.3 प्रासंगिकता के विभिन्न संदर्भ

18.4 मीरा : अपने युग संदर्भ में

18.5 मीरा का पुनः आविष्कार

18.6 प्रथम सत्याग्रही के रूप में मीरा : स्वाधीनता संग्राम और महात्मा गाँधी

18.7 प्रेम और विरह की रचनात्मक अन्तर्धारा : महादेवी के "आत्म" की संरचना

18.8 मीरा के जीवन की कलात्मक पुनःरचना : संगीत, शोध, जीवनी, फ़िल्में इत्यादि

18.9 मीरा और जैनेन्द्र

18.10 भक्ति, अध्यात्म और आधुनिक मन : मीरा की भक्तिभावना

18.11 सारांश

18.12 अभ्यास प्रश्न

खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

18.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ कर आप जान सकेंगे कि :

- प्रासंगिकता का अर्थ क्या होता है;
- अपने युग और परिवेश के बाहर, आधुनिक युग और परिवेश में मीरा क्यों और कैसे प्रासंगिक हैं;
- उनकी प्रासंगिकता के विभिन्न आयाम कौन से हैं; और
- आधुनिक मन के लिए मीरा की भक्ति-भावना की समझ, व्याख्या और प्रासंगिकता का क्या रूप हो सकता है।

18.1 प्रस्तावना

अब तक आप मीरा के युग और जीवन, उनके काव्य और भक्तिभाव आदि के विषय में पर्याप्त जानकारी पा चुके हैं। हमारे समय में मीरा की प्रासंगिकता का एक बड़ा आयाम स्त्री-विमर्श में खोजा गया है। इसका अर्थ यह है कि मीरा के काव्य को पुरुष-प्रधान समाज में स्त्री के साथ अन्याय और उसके विरुद्ध स्त्री के संघर्ष और विद्रोह की पूर्व-परम्परा की तरह देखा गया है। इस विषय में भी आप को इकाई–16 में जानकारी दी जा चुकी है।

हम यह मानते हैं कि मीरा का महत्व मात्र स्त्री-अस्तित्व के दायरों तक सीमित नहीं है। वे जिस प्रकार अपने अस्तित्व की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि कालिक सीमाओं

का अतिक्रमण करती हैं उसी प्रकार लैंगिक सीमा का भी। और अपनी तलाश को मनुष्य मात्र की साधना का रूप बना देती हैं। इस इकाई में उसी मानवीय तलाश के उपक्रम में मीरा की साधना और उसके अर्थ को खोजने का प्रयास किया जा रहा है।

18.2 वर्तमान में अतीत की प्रासंगिकता का अर्थ

हम अपने अतीत से जुड़े भी रहते हैं और उससे मुक्त होने की कोशिश भी करते रहते हैं। अतीत से जुड़े रहना ज़रूरी है। अतीत की सारी उपलब्धियों को आत्मसात करते हुए, उनके बाद ही आगे की उपलब्धियाँ शुरू होती हैं। और उनमें ऐसी क्रमबद्धता होती है कि अतीत और वर्तमान का जोड़ साफ़-साफ़ दिखाई नहीं देता। अगर ऐसा नहीं होगा तो हर पीढ़ी पहले कदम से शुरू करेगी। अतीत से मुक्त होना ज़रूरी है क्योंकि अगर ऐसा नहीं होगा तो हर पीढ़ी पहले कदम पर ही खड़ी रहेगी। आगे की यात्रा स्थगित हो जाएगी।

भाषा और लिपि के योग अर्थात लिखित शब्द के माध्यम से मानव समाज अपने अनुभव को पीढ़ी दर पीढ़ी संचित करता है और इनके कारण वर्तमान में अतीत की यात्रा एक निरन्तर क्रम की तरह जीवित रहती है। अतीत वास्तव में कभी पूरी तरह विगत नहीं होता। वरन् स्मृति, संस्कार, परम्परा बन कर जीवित रहता है। लेकिन वह कभी जैसा का तैसा, पूरा का पूरा जीवित भी नहीं रहता। जो बच रहता है वह अतीत की छवियाँ हैं और जाहिर है कि सम्पूर्ण अतीत राशि सुरक्षित नहीं रखी जा सकती। परवर्ती समाज और जीवन की आवश्यकताओं, अपेक्षाओं और परिवर्तनों के अनुसार उसमें भी परिवर्तन होते रहते हैं, काट छाँट होती रहती है, समस्त राशि में से बहुत कुछ झर जाता है, थोड़ा कुछ बचा रहता है। इस तरह निरन्तर नया जुड़ने और पुराना झरने की प्रक्रिया चलती रहती है। इस समस्त उपक्रम में कुछ ऐसा भी होता है जो अपेक्षाकृत स्थायी रूप से बच रहता है। इसका कारण यह है कि उसमें प्रासंगिकता के पुनः पुनः अन्वेषण की क्षमता मौजूद होती है। ध्यान रखने की बात यह है कि यह क्षमता एक सिरे पर शब्दों में होती है और दूसरे सिरे पर पाठक की चेतना और पाठ क्षमता में, जिसके सहारे वह नए अर्थ का अन्वेषण करता है।

अतीत की कोई भी सार्थक छवि हमारे पास शब्दों में ही जीवित और अंकित होकर बचती है, प्रायः लिखित शब्दों में। लिखित शब्द संचित किए जा सकते हैं। परम्परा में यत्नपूर्वक संचित मौखिक शब्दों को भी लिखित शब्दों का समतोल माना जा सकता है। ऐसे संचित शब्दों को आर्षवाक्य अथवा आसवाक्य कहा जाता है। संचित शब्द अपने तात्कालिक संदर्भ से, वक्ता-श्रोता संबंध से मुक्त हो जाते हैं और नए संदर्भों में नए अर्थों के साथ पुनः जीवित किए जा सकते हैं। इतिहास में ऐसे क्षण भी आते हैं जिनमें परम्परा अपनी पिछली दिशा से टूट कर एक नई दिशा में मुड़ जाती है। परिस्थितियाँ पूर्ण परिवर्तन की ज़रूरत पैदा कर देती हैं। लेकिन नई परिभाषा के लिए नई भाषा एक दिन में नहीं बन जाती। पुरानी भाषा में ही नए अर्थ पैदा हो जाते हैं। मीरा और कबीर का आधुनिक युग में पुनः आविष्कार भी ऐसी ही एक घटना है।

कुछ प्रसिद्ध उदाहरणों के द्वारा बात को स्पष्ट किया जा सकता है। रामचरित मानस की बार बार उद्धृत की जाने वाली एक पंक्ति है "पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।" मानस में यह सीता-विवाह प्रसंग में ससुराल-गमन के समय पुत्री के लिए माँ की शिक्षा का एक अंग है। वहाँ भी तात्कालिक परिस्थितियों को देखते हुए इन्हें स्त्री के जीवन के संदर्भ में कवि का हस्तक्षेप ही माना जाएगा। लेकिन आधुनिक समय में, स्वाधीनता संग्राम के दौरान इन शब्दों ने इस संदर्भ के बाहर आकर एक सर्वथा भिन्न अर्थ धारण कर लिया। वे राजनीतिक पराधीनता के विरुद्ध स्वाधीनता की राष्ट्रीय आकांक्षा के वाहक बन गए। वाल्मीकि-रामायण की पंक्ति "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" का भी ऐसा ही अर्थान्तर हुआ।

वनगमन करते हुए राम की अयोध्या के लिए कही गई इन पंक्तियों ने स्वाधीनता संग्राम के दौरान राष्ट्रीय चेतना के गौरव और अभिमान का अर्थ धारण कर लिया। "झाँसी की रानी" एक विशेषण की तरह प्रयुक्त होकर अब केवल इतिहास-प्रसिद्ध योद्धा लक्ष्मीबाई का बोध नहीं कराता, प्रसंग के अनुसार किसी भी तेजस्विनी या कर्कश या कलहप्रिय स्त्री का विशेषण बना दिया जाता है। बीसवीं सदी के प्रथमार्द्ध में इतिहास पुराण पर आधारित अनेक आख्यानों को समसामयिक परिस्थितियों के अनुकूल अर्थों में ढाल कर जीवित किया गया। बीते हुए समय के व्यक्ति भी आख्यान बन जाते हैं। उनका नाम या उनके शब्दों का मन्तव्य उन्हें आगामी समय के लिए प्रासंगिक अथवा अप्रासंगिक बनाता है। प्रासंगिकता के पैमानों पर मूल्य और महत्व समय-संदर्भ के अनुसार बदलता रहता है। वर्तमान युगचेतना के अनुसार अतीत के भी अधिमूल्यन और अवमूल्यन का क्रम चलता रहता है। उदाहरण के लिए मीरा और कबीर ने अपने शब्दों के द्वारा आधुनिक काल में नई और अनेकायामी प्रासंगिक मूल्यवत्ता का अर्जन किया।

अर्थ शब्द में ही संचित होता है और छवि को सार्थक-अर्थसहित-बनाता है। साहित्य की विशेष सार्थकता भी इसीलिए है कि वह शब्द की एक विशेष भंगिमा है और विशेष भाव से ही अतीत को हमारे लिए जीवित अतः सार्थक करने में समर्थ होता है।

इस पूरे कथन में दो शब्द रेखांकित किए जा सकते हैं - सार्थक और प्रासंगिक। दोनों एक दूसरे से जुड़े तो हैं लेकिन एक दूसरे का पर्याय नहीं है। सामान्यतः जो सार्थक है वह प्रासंगिक भी होता है लेकिन ऐसा भी संभव है कि प्रासंगिक होने के बावजूद कोई वस्तु हमारे लिए सार्थक न हो या सार्थक तो हो किन्तु प्रासंगिक न हो सके।

साहित्य के संदर्भ में सार्वभौमिक और सार्वकालिक मूल्यों की बात से हम अपरिचित नहीं हैं। इन मूल्यों से गर्भित साहित्य सार्थक होता है और बार बार नए आविष्कार के द्वारा प्रासंगिक भी बनाया जा सकता है।

प्रसंग का अर्थ है तत्काल उपस्थित क्षण। प्रासंगिक होने का अर्थ किसी तात्कालिक संदर्भ में सार्थक और उपयोगी हो सकता है। इसलिए प्रासंगिकता का प्रश्न सदैव केवल वर्तमान से संदर्भित ही हो सकता है। सार्थकता के लिए ऐसा जरूरी नहीं है। अतीत का महान साहित्य सार्थक सदैव बना रहता है, प्रासंगिक चाहे न रह जाए। रचना में प्रासंगिकता से अलग होकर सार्थकता एक निजी और व्यक्तिगत अनुभूति रह जाती है जो कोई अकेला पाठक किसी रचना से केवल अपने लिए प्राप्त करता है।

जो साहित्य सार्वभौमिक और सार्वकालिक अर्थों को किसी प्रासंगिक संदर्भ में गूँथ कर तात्कालिक अभिप्राय से जोड़ लेता है वह एक साथ प्रासंगिक भी होता है और सार्थक भी।

18.3 प्रासंगिकता के विभिन्न संदर्भ

अपने समय के बाद भी बचे रहने वाले शब्दों को प्रासंगिक बनाना अगले युग के पाठक और आलोचक का काम है। आलोचक भी एक विशेषज्ञ पाठक ही होता है। पाठ के विशेष तरीकों से वह उन विगत रचनाओं में प्रासंगिकता की तलाश करता है जो पहले हाशिए पर थीं, या पहले की महत्वपूर्ण रचनाओं को नए संदर्भों में सिरे से प्रासंगिक बनाता है या उनकी तुलना में नए मूल्यांकन के द्वारा किन्हीं दूसरी रचनाओं को अधिक प्रासंगिक पाता है। अर्थात बच रहे शब्द कभी-कभी अपने आप में भी प्रासंगिक होते हैं तो कभी-कभी उन्हें प्रासंगिक बनाया जाता है। बदली हुई परिस्थितियों में बदली हुई युगचेतना के कारण ऐसा अनिवार्य भी होता है और संभव भी।

यहाँ जब हम बदली हुई युगचेतना की बात कर रहे हैं तो उसका अर्थ मध्यकाल की समाप्ति और आधुनिक बोध का उदय है। यह बड़े पैमाने का परिवर्तन है। ऐसे परिवर्तनों के समय में कई बार दिखाई देता है कि चेतना तो बदल जाती है लेकिन बदली हुई चेतना को अभिव्यक्त करने के लिए नई भाषा मिलने में देर लगती है। उस युग के वासी पुरानी शब्दावली में ही नई चेतना को व्यक्त करते हैं। ऐसा भी होता है कि पहले से प्राप्त अभिव्यक्ति में कोई ऐसा अर्थ दिखाई दे जाता है जो इन बदली हुई परिस्थितियों में भी हमारी बात कहता हुआ हमें चकित कर देता है। इन बदले हुए अर्थों के रूप भिन्न-भिन्न और अनेक मुखी हो सकते हैं। अपने युग के अनुकूल प्रश्नों के लिए उत्तर खोजने के लिए हम परम्परा के पास जाते हैं, उत्तर या नया अर्थ इस बात पर निर्भर करता है कि हमारा प्रश्न क्या है।

समाजशास्त्र, इतिहास, राजनीति यहाँ तक कि अर्थशास्त्र भी आज साहित्य को अपनी स्रोत सामग्री की तरह इस्तेमाल करना ज़रूरी पा रहे हैं क्योंकि समझा जा चुका है कि शास्त्रों के सैद्धान्तिक ग्रंथों की अपेक्षा किसी भी युग के जिए गए जीवन की - असली जीवन की - असली तस्वीर साहित्य में ही होती है। स्वाधीनता के लिए संघर्ष जैसे आन्दोलित और परिवर्तन के लिए उत्सुक काल में न केवल ज्ञान के विभिन्न शास्त्र और अनुशासन बल्कि वास्तविक राजनीति भी जनता के साथ संवाद के लिए साहित्य से व्यक्ति और वाणी उधार लेती है।

आधुनिक काल में जिन दो मध्यकालीन कवियों को नए युग के प्रश्नों के उत्तरों की तलाश में प्रासंगिक पाया गया और नए सिरे से मूल्यांकित किया गया, वे थे कबीर और मीरा। यह कहना शायद ज़्यादा सच हो कि ये दोनों कवि भले ही अपने शारीरिक जीवन में मध्यकाल में जिए हों, उन्हें अपना वास्तविक निवास-स्थान आधुनिक देशकाल में ही मिला। मीरा के जीवन के विषय में पिछले कुछ वर्षों में विस्तृत और व्यापक शोध ने बंहुत सी सामग्री खोज निकाली है और उनकी पूरी जीवनयात्रा का एक प्रामाणिक सा लेखाजोखा तैयार कर लिया है। इसके पहले तक भी जो बिखरी हुई सूचनाएँ प्राप्त थीं उनसे इतना तो ज्ञात ही था कि भक्तिकाव्य में मीरा कृष्णभक्ति की परम्परा से जुड़ी होकर भी वस्तुतः अलग और अकेली हैं। वल्लभ सम्प्रदाय और चैतन्य सम्प्रदाय से एक फ़ासला तो दिखाई ही देता है, अन्य भी किसी स्थापित सम्प्रदाय में उनको स्वीकृति मिली हुई नहीं दिखती। इसलिए इस विचार में कोई अतिरंजना नहीं जान पड़ती कि उनका वास्तविक निवास आधुनिक देशकाल में ही है।

इस खण्ड में हम मीरा के इसी पुनः आविष्कार का अध्ययन करने जा रहे हैं।

18.4 मीरा : अपने युग संदर्भ में

अतीत का अध्ययन करते हुए भी हम वस्तुतः अतीत में प्रस्थान नहीं कर सकते। अतीत के विषय में हमारी दृष्टि वर्तमान के हमारे बोध से ही संचालित रहती है। अतीत को अतीत के रूप में देखने का अर्थ अपने वर्तमान के बोध से अतीत के बारे में प्राप्त सूचनाओं के आधार पर अतीत को कल्पित कर लेना है। अतीत का कोई भी रूप केवल कल्पित ही हो सकता है लेकिन प्राप्त सूचनाओं के आधार पर उसकी संभाव्यता और प्रामाणिकता का तर्कसंगत अनुमान किया जा सकता है।

मीरा के विषय में प्राप्त सूचनाओं का उपयोग करते हुए हम उनके अपने युग में उनकी प्रासंगिकता की परख कर सकते हैं। युग का अर्थ एक सिरे पर उनका तात्कालिक परिवेश है - राजस्थान, दो राजवंश-मातृकुल राठौर और पतिकुल सिसौदिया और तत्कालीन

राजनैतिक शक्ति-संबंध। दूसरे सिरे पर भक्तिकाल का व्यापक परिवेश और यहाँ के भी विभिन्न साम्प्रदायिक शक्ति-संबंध।

मीरा का जीवन दोनों प्रकार के संबंध-जालों में उलझा हुआ चलता है और दोनों के लिए चुनौती बन जाता है। मीरा अपने दोनों परिवेशों में स्त्री की स्थिति और सत्ता को अपनी शर्तों पर परिभाषित करती हुई दिखती हैं। इस तरह मीरा के युग के अध्ययन के लिए मीरा के काव्य में प्राप्त आत्म-साक्ष्यों से हमें उनके तात्कालिक परिवेश में कुल-मर्यादा और राज-सम्मान के नाम पर स्त्री की आत्मिकता और स्वाधीनता के दमन की लिखन्त मिलती है जो मीरा की मृत्यु के मिथकीय बयान से संकेतित मर्यादा-हनन (मर्यादा की रक्षा के लिए हत्या - आज की भाषा में "ऑनर-किलिंग") तक जाती है। यह उनके तात्कालिक परिवेश का सत्य है, इसे भारतीय मध्यकाल के बारे में आमबयानी नहीं बनाया जा सकता। वे शायद इसी वजह से आम जनता का व्यापक समर्थन और स्नेह-संबल अर्जित कर सकीं और एक समकक्ष शक्ति-केन्द्र बन गईं। शायद इसीलिए उनकी हत्या के निरन्तर प्रयासों के बावजूद उन्हें तत्काल मर्यादा - हनन का पात्र नहीं बनाया जा सका।

भक्तिकाल के व्यापक परिवेश में भी वे तत्कालीन साम्प्रदायिक आचार्यों और मठाधीशों के लिए चुनौती बनीं। राजमहल में अगर उनकी शारीरिक हत्या के प्रयास हुए थे, तो इन आचार्यों और मठाधीशों ने उनकी बौद्धिक, भावात्मक और चारित्रिक हत्या के प्रयास में कोई कसर नहीं छोड़ी। मूल कारण उनकी स्वाधीन चेतना और अधीनता से इंकार तो है ही, संभवतः साधारण जन के बीच उनकी स्वीकृति, सम्मान और प्रतिष्ठा भी है। जिन आचार्यों ने स्वयं स्त्रीस्वरूपा आत्मा का अस्तित्व धारण करके परमपुरुष परमात्मा को आत्मनिवेदन किया, राधा और गोपियों के रूप में स्त्री का दैवीकरण किया और उन्हें पूजा का पात्र बनाया, उनके लिए एक सचमुच की स्त्री का भक्तिभाव और आत्म-निवेदन इतने भारी पड़ गए कि वे उनके बारे में तरह तरह के प्रवाद-प्रचार और लांछन लगाने की राजनीति में जुट गए। इस अकारण वैर के परिप्रेक्ष्य में मीरा की पंक्ति "मीरा सुत जायो नहीं, शिष्य न मूँडो कोय" एक विशेष व्यंजना ग्रहण कर लेती है।

मीरा की भक्तिभावना का स्वरूप भी हमको भक्तिधाराओं के निर्गुण-सगुण और पहली के लिए ज्ञानमार्गी-प्रेममार्गी तथा दूसरी के लिए रामभक्ति-कृष्णभक्ति सरीखे स्पष्ट, सीमित और संकीर्ण विभाजनों की अपर्याप्तता और निरर्थकता का प्रमाण जुटाता है और साधारण जनसमुदाय की सर्वसमावेशी ज्ञान, भक्ति और दर्शन की समन्वयवादी मानसिकता का पता भी देता है। मीरा के आराध्य का नाम राम, कृष्ण, गिरिधर गोपाल, शालिग्राम, दीनानाथ, रघुनाथ, जोगी और अविनासी आदि आदि हैं। मीरा निर्गुण को जानती हैं और अपने अतृप्त प्रेम की तलाश में अपने लिए चिर-प्रणयिनी चिर-विरहिणी का व्यक्तित्व और अपने आराध्य के लिए गोपीवल्लभ, सखा और प्रेमी कृष्ण का अपेक्षाकृत बारम्बार सम्बोधन और बाना चुनती हैं। इस तरह उनकी भक्ति निर्गुण और सगुण की अवधारणाओं के परस्पर पूरक आवागम की व्यंजना है।

मीरा को उनके अपने युग संदर्भों तक ही सीमित रखा जाए, तो भी उनकी प्रासंगिकता अक्षुण्ण है।

18.5 मीरा का पुनः आविष्कार

आधुनिक युग के आरंभ से लेकर अब तक लगभग सौ वर्ष से अधिक के समय में मीरा के पुनःपाठ और उनकी प्रासंगिकता के आविष्कार का एक सिलसिला चलता रहा है। अनेक पाठकों और आलोचकों ने अपने प्रश्न और उद्देश्य के अनुसार यह आविष्कार किए हैं। इस क्रम में मीरा की अनेक छवियाँ गढ़ी गई हैं। वे एक दूसरे से पर्याप्त भिन्न और

कभी-कभी विपरीत भी हो सकती हैं। आधुनिक पाठचर्या की विशेषता यह है कि यदि व्याख्याता अपनी प्रस्तावना को "टेक्स्ट" अथवा पढ़न्त द्वारा प्रमाणित कर पाता है तो प्रत्येक अपनी अपनी तरह से सत्य भी होती हैं। अतः मीरा की प्रासंगिकता का कोई एक निश्चित और सर्वस्वीकृत विधान नहीं है।

मीरा के शब्द वाचिक परम्परा में जनता ने सुरक्षित रखे थे। मध्यकालीन अन्य कवियों के समान मीरा की बोली-बानी का संग्रह भी आधुनिक काल में वाचिक परम्परा को लिखित परम्परा में दर्ज कर के हुआ। हमारी संगीत की परम्परा में भी मीरा का काव्य संचित-सुरक्षित रहा है और भजन-मण्डलियों ने इसे अपनी मूल्यवान निधि की तरह सहेजा है। शास्त्रीय संगीत तथा लोकसंगीत दोनों में समान रूप से मीरा की कविता सम्मानित रही है।

सच तो यह है कि गायन में मीरा के पदों का भावात्मक सौन्दर्य प्रबल, एकाग्र और तीव्र हो उठता है। केवल शब्द योजना के रूप में पढ़े जाने पर उनका प्रभाव वैसा गहन नहीं होता जैसा गायन में। वास्तव में अगर मीरा हमारे पास बची रही हैं तो इसका श्रेय बहुत अंशों में भजनसंगीत की मण्डलियों को जाता है। सुश्री परिता मुक्ता ने मीरा के विषय में अपने शोध "अपहोल्डिंग द कोंमन लाइफ़" में मीरा की जीवनयात्रा का इस रूप में पुनर्गठन किया है कि राजनिवास त्याग कर वे सामान्यजन के बीच जाकर उनका अपना अंग और विस्तार बन गईं और सदा के लिए उनके संगीत में बची रहीं। वे वही बनी रहतीं और उन्हीं तक सीमित रह जातीं लेकिन आधुनिक काल में, स्वाधीनता संग्राम के दिनों में उनका पुनःआविष्कार हुआ।

किसी बड़े आन्दोलन या मूलभूत परिवर्तन से गुजरते हुए समाज को अपने अतीत में ऐसे आदर्शों की तलाश होती है जिसके सहारे वे अपने नए बदलावों को परम्परासम्मत बना पाएँ। आधुनिक काल में मीरा की प्रासंगिकता के आविष्कार का अर्थ यह है कि उन्हें स्वाधीनता संग्राम में संघर्ष के लिए एक नए आदर्श, एक नई प्रेरणा की तरह देखा गया।

तब तक मीरा का अस्तित्व उनके भजनों के रूप में भजन मण्डलियों के गीत-संचय में ही सुरक्षित था। भक्तिकाल में वैष्णवों की वार्ताओं और भक्तमाल आदि में ऐतिहासिक मीरा के जीवन के बारे में प्राप्त सूचनाएँ इतनी विरल थीं कि उनकी प्रतिमा को मनचाहे युगानुकूल साँचे में ढाला भी जा सकता था। पुनः आविष्कार और नए अर्थों का अन्वेषण भी सामाजिक ऐतिहासिक विकास के साथ-साथ विकास की प्रक्रिया से गुजरता है। मीरा के विषय में भी यही सच है और उनके मूल्यांकनों के उदाहरण से इस प्रक्रिया को समझा जा सकता है।

भजनसंसार और भजन-मण्डलियों के आधिपत्य से उनको बाहर निकालने का एक अन्य अधिक ठोस ऐतिहासिक कारण भी मौजूद था। स्वाधीनता संघर्ष को कारगर बनाने के लिए, उसे जनमानस की भावनात्मक गहराइयों तक पहुँचाने के लिए, उसे उगती हुई नयी पीढ़ी के संस्कारों का हिस्सा बनाने और घर घर के भीतर पहुँचाने के लिए स्त्री को भागीदार बनाना जरूरी था। इस भागीदारी के लिए उसका घर से बाहर निकलना भी ज़रूरी था। तत्कालीन रूढ़िग्रस्त समाज में ऐसा करने का अर्थ जीवन पद्धति में, उससे जुड़े सामाजिक सोच में, स्वयं स्त्री की अपनी सोच में आमूल परिवर्तन था। इसके लिए नारीत्व के आदर्श को पुनर्गठित करना ज़रूरी था। स्वाधीनता का संघर्ष बुनियादी तौर पर राजनीतिक था लेकिन पर्दे के बाहर आना, पराए मर्दों के बीच उठना बैठना, उनसे बात करना, जलूस निकालना, नारे लगाना, अपनी सोच और निर्णय क्षमता में उचित अनुचित का एक भिन्न और नया विवेक उत्पन्न करना और इन सब बातों के प्रचार प्रसार द्वारा अपने रूढ़िग्रस्त समाज को मुक्त भी करना अपने आप में एक बड़ी सामाजिक क्रांति से

कम नहीं थे। मीरा ने "सन्तन ढिग बैठि बैठि लोक लाज खोई" की घोषणा स्वयं मुक्त कण्ठ से की थी। औरत के लिए घर के बाहर निकलना लोक लाज खोने का पर्याय था तो स्वाधीनता संग्राम के इस दौर तक उसे एक पवित्र कर्म बनाने की ज़रूरत खड़ी हो चुकी थी।

ऐसी प्रतिमा को अतीत से ही क्यों चुना गया? उस समय तक समाज आधुनिकता और आधुनिकरण (आधुनिक होने की प्रक्रिया) के अनेक सीढ़ियाँ पार कर आया था। आधुनिक काल में ही, 19वीं सदी के अन्त में पण्डिता रमाबाई और क्षमाबाई जैसी महिलाएँ रूढ़ियों से विद्रोह और नूतन विवेकसम्पन्न सजगता का उदाहरण प्रस्तुत कर चुकी थीं। समाज का एक हिस्सा अंग्रेज़ी भाषी हो चुका था। ब्रह्म-समाज का आन्दोलन खड़ा हो चुका था। कुछ अंशों में पढ़ी लिखी और मुक्त अकुण्ठ पश्चिमी स्त्री की अवधारणा अपने समाज में स्त्री की स्थिति के लिए आलोचना और कसौटी का काम कर रही थी। लेकिन तब तक यह अधिकांशतः अभिजात समाज की बात थी। प्रसिद्ध इतालवी विचारक ग्रामची का कथन यहाँ स्मरणयोग्य है कि आम आदमी या सामान्यजन की नैतिक अवधारणाएँ शासकवर्गीय उच्चवर्गीय नैतिक अवधारणाओं से भिन्न और उनके विपरीत होती हैं, उनकी अपेक्षा अधिक सबल और हठीली और कारगर तो होती हैं लेकिन अव्यवस्थित, अपरिष्कृत और स्वभावतः किसी केन्द्रीय राजनीतिक विचार, उसके प्रति सजगता और अभिव्यक्ति के अभाव से ग्रस्त भी होती हैं। समझा जा सकता है कि उसका वैचारिक कायाकल्प कठिन होता है लेकिन अगर उसे किसी समान उद्देश्य के लिए एकजुट किया जा सके तो वह बहुत कारगर और ताकतवर हो सकता है।

भारतीय समाज एक सुदीर्घ सांस्कृतिक परम्परा वाला देश है। ऐसे समाजों में परम्परा की जड़ें बहुत गहरी होती हैं। इसी गहराई की वहज से बहुत बार वे जड़ता का पर्याय हो चुकने के बाद भी परम्परा का ही नाम धारण किए रखती हैं। युगान्तर जैसा बृहत कालमंथन ही उनको जीवन की पद्धति और मर्यादा के स्थान पर जड़ता और अवरोध की तरह देखना सिखाता है और नयी विचारधाराओं, दृष्टियों और पद्धतियों की स्वीकृति के लिए तत्परता और उत्सुकता पैदा करता है। फिर भी "पुरखों की परम्परा," "मानमर्यादा" "कुलधर्म" आदि के विषय में अन्धी कट्टरता और मरने मारने के जुनून से लेकर एक दुविधा और हिचक तक के मनोभाव शेष बने रहते हैं। ऐसे में अतीत से खोजे और पाए हुए उदाहरण अपनी परम्परा और युगान्तर के बीच एक पुल का काम करते हैं। उनमें अपने स्वीकृत आदर्शों का परिचित आश्वासन और नवीन युगधर्म एक साथ मौजूद रहता है।

इस युगान्तर में भारतीयता की पुनःपरिभाषा की जा रही थी जिसमें स्त्रीत्व का नया आदर्श भी सम्मिलित था। मीरा को इसी साँचे में ढाला गया।

18.6 प्रथम सत्याग्रही के रूप में मीरा : स्वाधीनता संग्राम और महात्मा गाँधी

महात्मा गाँधी ने मीरा का नाम प्रथम सत्याग्रही के तौर पर याद किया था। स्वाधीनता संग्राम में महात्मा गाँधी ने सत्याग्रह को अपना हथियार बनाया था। इस हथियार को परम्परासम्मत बताने और व्यापक रूप से स्वीकार्य बनाने के लिए उन्हें अतीत से एक उदाहरण की, एक आदर्श की ज़रूरत थी। गाँधी जी ने इस प्रतिमा के रूप में अन्य भक्तों के साथ मीरा को चुना लेकिन लोकलाज की परिभाषा बदल दी। उन्हें एक ओर मीरा को पितृसत्ता और दाम्पत्य के दायरे में रखते हुए ही दूसरी ओर अहिंसक विद्रोह का प्रतीक बनाना था।

गांधी जी ने सत्याग्रह का प्रथम प्रयोग दक्षिण अफ़्रीका में किया था। प्रभुदास गाँधी ने अपनी गुजराती पुस्तक "बापू जीये कारावेलो आश्रम भजनानो स्वाध्याय" में बताया है कि वहाँ "मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई" गाँधी जी का प्रिय भजन था और वे अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष में इस भजन से ताक़त पाते थे। भारत आने के बाद उन्होंने और भी अधिक पुटता के साथ सत्याग्रह को एक व्यापक राजनीतिक दर्शन की तरह विकसित किया और इस दौरान अपने लेखों और भाषणों में बारबार मीरा तथा अन्य भक्तों के उदाहरण से यह स्थापित किया कि अत्याचार के विरुद्ध संघ़र्ष में सत्याग्रह एक युगों पुराना हथियार हैः

"जिस तरह प्रकाश और अंधकार एक दूसरे के विपरीत है, जिस तरह शीत और ताप कभी साथ नहीं रह सकते उसी तरह न्याय और अन्याय भी एक दूसरे के विपरीत हैं..... प्रह्लाद ने अपने दुष्ट पिता के साथ असहयोग किया। मीराबाई ने अपने पति के साथ और नरसी मेहता ने अपने समाज के लोगों के साथ। आज हम इन तीनों की पूजा करते हैं ..... सहयोग और असहयोग अनादिकाल से इस्तेमाल की स्वीकृत नीतियाँ रही हैं - न्याय के साथ सहयोग और दुष्ट के साथ असहयोग। और कितने भी घोषणापत्रों के द्वारा इसे ग़लत नहीं ठहराया जा सकता" (महात्मा गाँधी, "व्हॉट द स्क्रिप्चर्स से" "नवजीवन", में आठ अगस्त 1920)।

यह एक विरोधाभास प्रतीत हो सकता है लेकिन उनके पुनः आविष्कार के प्रथम चरण में ऐसा हुआ कि एक ओर मीरा को प्रथम पवित्र विद्रोहिणी माना गया और दूसरी ओर उन्हें पतिव्रता नारी के भारतीय सामाजिक आदर्श के ढाँचे में सुरक्षित भी रखा गया। वैवाहिक बन्धन के विरुद्ध विद्रोह के बावजूद वे पतिव्रता का आदर्श भी बनी रहीं। इस गुत्थी को भारतीय जन-मन ने इस तरह सुलझाया कि उसकी धारणा के अनुसार मीरा ने राणा को कभी अपने पति की तरह स्वीकार नहीं किया था। मीरा की कविता का अन्तर्साक्ष्य भी इस का प्रमाण देता है कि मीरा स्वयं को कृष्ण की पत्नी मानती थीं। कहा जाता है कि सप्तपदी के समय मीरा ने कृष्ण की मूर्ति को अपनी चूनर से बांध रखा था और इस प्रकार उन्होंने राणा के साथ नहीं वस्तुतः कृष्ण के साथ ही भाँवरें ली थीं। इसलिए सामाजिक विवाह उनका वास्तविक विवाह था ही नहीं। कृष्ण के प्रति अनन्य समर्पण और भक्ति की पवित्रता का यह आवरण तत्कालीन समाज में विवाह की संस्था के लिए मीरा की चुनौती को उचित और वैध ठहराने के लिए ज़रूरी रहा होगा। ऐसी कथाओं के माध्यम से इस विद्रोह का औचित्य और वैधता सिद्ध की जाती है। बाद में अवश्य ऐतिहासिक तौर पर भी यह सिद्ध कर दिया गया कि बहुत ही अल्प वैवाहिक जीवन के बाद वैधव्य ने मीरा के इस भक्तिभाव को वैधता और औचित्य प्रदान किया और उनकी कविता में जिस राणा के अत्याचार की बात कही गई है वह उनके दुष्ट देवर थे।

लेकिन गांधी जी के लिए जरूरी था कि मीरा को सत्याग्रही के रूप में समाज का आदर्श मानने के पहले वे उनको एक आदर्श पत्नी भी सिद्ध करें। कृष्ण को मीरा का वास्तविक पति मान लेने से उनका काम चलने वाला नहीं था। दाम्पत्य उनके लिए एक पवित्र और अनिवार्य संबंध था। उनका मानना था कि "दाम्पत्य धर्म की रक्षा करने वाली बाड़ है और अगर बाड़ नष्ट हुई तो धर्म के भी टुकड़े-टुकड़े हो जाएँगे। धर्म की बुनियाद आत्मसंयम है और दाम्पत्य आत्मसंयम के अतिरिक्त और कुछ नहीं।" (महात्मा गांधी, "यंग इंडिया" में "अबॉलिश मैरिज", तीन जून 1926 ई) इसलिए उन्होंने मीरा को एक ऐसी आदर्श पत्नी घोषित किया जिसने "शान्त गरिमा और समर्पण के साथ उन सब आघातों को सहन किया जो उनके पति ने उन्हें अपनी इच्छानुसार झुकाने के लिए उन पर किए थे।" सत्याग्रह की व्याख्या करते हुए उन्होंने बताया कि "आपको शायद मालूम न हो कि

अहिंसक प्रतिरोध के लिए गुजराती शब्द सत्याग्रह है। इसे मैंने तरह तरह से सत्याग्रह, प्रेमाग्रह और आत्माग्रह कहकर समझाया है। पर वास्तव में शब्दों में कुछ नहीं रखा। करना यह है कि चारों तरफ दिखाई देने वाली नफ़रत के बीच प्रेम से भरा हुआ जीवन जिया जाए। और इसकी ताकत में अपराजेय श्रद्धा रखे बिना हम ऐसा नहीं कर सकते। 200 या 300 वर्ष पहले मीराबाई नाम की एक महान रानी हो चुकी हैं। उन्होंने अपने पति को और बाकी सब कुछ को त्याग दिया और संपूर्ण प्रेम का जीवन जिया। अन्त में उनके पति भी उनके भक्त हो गए। आश्रम में हम अक्सर उनके बहुत सुन्दर भजन गाया करते हैं।" (महात्मा गाँधी, एस्थर फ़ेयरिंग के नाम पत्र, 1917)।

प्रेम के आचरण की परिभाषा करते हुए गीता पर अपने व्याख्यानों में गाँधी कहते हैं, "मीरा ने कहा कि दुनिया जो चाहे, कहे, परवाह नहीं क्योंकि उन्होंने दर अस्ल अपने पति को छोड़ा था ही नहीं, बल्कि वे सच्ची पतिभक्ति का अर्थ खोजना चाहती थीं।"

मीरा और अन्य भक्तों के उदाहरण से गाँधी जी एक ऐसे नैतिक मनुष्य की कल्पना को ठोस आकार प्रदान कर रहे थे जो यंत्रणाओं को अडिग अविचलित भाव से झेलते हुए भी शत्रु से घृणा नहीं करता, उसको "प्रेमशक्ति" से जीतता है। हिंसा के विरुद्ध अहिंसक प्रतिरोध के लिए सत्याग्रह और सविनय अवज्ञा का जो नैतिक हथियार वे गढ़ना चाहते थे उसके लिए मीरा उन्हें एक साकार उदाहरण प्रतीत हुई और इसलिए उन्होंने मीरा को एक नए साँचे में ढाल कर युगानुकूल प्रासंगिकता प्रदान की।

आज स्त्री-विमर्श की विकसित तर्कपद्धति के सहारे आलोचक कह सकते हैं, कहते भी हैं कि, गाँधी जी ने मीरा की प्रतिमा के साथ मनमानी की, उनकी छवि को तोड़ा मरोड़ा और उन्हें स्त्री के विद्रोह का आदर्श और प्रेरणा नहीं बनने दिया। "अपहोल्डिंग द कोंमन लाइफः द कम्यूनिटी आफ़ मीराबाई" नामक पुस्तक में परिता मुक्ता ने यही तर्क दिया है। आज प्राप्त तथ्यों के प्रकाश में यह बात तर्कसंगत और सत्य भी लगती है लेकिन हमें भूलना नहीं चाहिए कि एक तो तब तक मीरा के जीवन के अधिकतर तथ्य अज्ञात थे और दूसरे, सामाजिक परिवर्तनों में स्त्री की भूमिका की पुनःपरिभाषा का यह आरंभिक चरण था और स्त्री के संदर्भ में विशेषकर, समाज किसी भी परिवर्तन के लिए बहुत प्रतिरोध से रास्ता देता है। स्मरणीय है कि साधारण जन को स्वाधीनता संग्राम से जोड़ने और उनके नेतृत्व की योग्यता अर्जित करने के लिए गाँधी ने स्वयं भी सन्त महात्मा का बाना और ज़ीना धारण किया । उनकी अपनी आस्था और तत्कालीन परिस्थिति को देखते हुए मीरा की जो छवि उन्होंने गढ़ी उसका अपना औचित्य था : स्त्री चेतना के जागरण का आह्वान करते हुए भी वे समाज को और शायद स्वयं को भी यह आश्वासन दिए रखना चाहते थे कि स्त्री सार्वजनिक स्थलों पर दिखाई देने लगेगी, सार्वजनिक राजनीतिक कार्यक्रमों में भाग लेने लगेगी, बच्चों के पालन पोषण में अपनी शिक्षा के उपयोग से स्वाधीनता संग्राम की अगली पीढ़ी को संस्कार देगी लेकिन इसके अलावा कोई और फ़र्क नहीं आएगा।

18.7 प्रेम और विरह की रचनात्मक अन्तर्धारा : महादेवी के 'आत्म' की संरचना

महात्मा गाँधी ने मीरा को स्वीकृति और सत्ता प्रदान कर के एक वातावरण का निर्माण किया जिसके भीतर स्त्री की नई स्थापिति की जानी थी। मीरा उस वातावरण में बहुत सहज स्वाभाविक रूप से स्वाधीन स्त्री के व्यक्तित्व का साँचा बन गईं। महादेवी वर्मा इसका एक प्रसिद्ध और प्रत्यक्ष उदाहरण है। 1921 में जब असहयोग आन्दोलन अपने चरमशिखर पर था तब 1902 ई. या 1907 ई. (विवादग्रस्त) में जन्म लेने वाली महादेवी

वर्मा 14 वर्ष या 19 वर्ष की रही होंगी। गाँधी जी के आह्वान का स्वर भी प्रबलतम रहा होगा। प्रभाव इस पुकार का था या उस समय के व्यापक वातावरण का या स्वयं महादेवी वर्मा के अपने स्वभाव और मनोवृत्ति का, कहना मुश्किल है। शायद थोड़ा-थोड़ा हर बात का। महादेवी वर्मा आधुनिक साहित्य की मीरा कही गईं तो यह केवल संयोगवश नहीं था। उन्होंने मीरा के नमूने पर ही अपनी आत्मिकता को गढ़ा था। बचपन के विवाह को अस्वीकृत करके ससुराल जाने से इंकार कर दिया। उनके विषय में भी मीरा के जीवन जैसी यह घटना दर्ज है कि उन्होंने दीक्षा लेकर भिक्षुणी बनना चाहा था। जीवगोस्वामी ने मीरा को दीक्षा देने से यह कह कर इंकार किया था कि वे स्त्री को नहीं देखते और मीरा ने तिरस्कारपूर्वक यह कहा था कि कृष्ण के सिवाय दुनिया में दूसरा पुरुष यह कौन पैदा हो गया। महादेवी के भी दीक्षागुरु ने भी स्त्रीदर्शन से इंकार करते हुए दीक्षा देने से मना किया था और महादेवी ने भी उसी तिरस्कार के आशय को दोहराते हुए कहा था कि जिसका पौरुष स्त्रीदर्शन से खण्डित हो जाता है वह गुरु होने के योग्य नहीं।

प्रेमदीवानी मीरा के काव्य-व्यक्तित्व का आकर्षण उनके लिए इतना प्रबल है कि उनकी परम्परा के अधुनाकरण में महादेवी के काव्य की संवेदना निरन्तर प्रतीक्षारत चिरविरहिणी की पीड़ा और पर्युत्सुक आत्म-निवेदन का पर्याय बन जाती है। हालाँकि यदाकदा उल्लास और आनन्द के अपवाद भी मौजूद हैं लेकिन मुख्यतः वे "विरह में चिर" होने के संकल्प से वे "मिलन का मत नाम ले" की प्रतिज्ञा करती हैं। वे "पीड़ा का साम्राज्य" और "मिटने का अधिकार" अपनी दावेदारी का विषय मानती हैं।

छायावाद में सामान्यतः और महादेवी में विशेषतः प्रेम का स्वरूप ऐसा है जिसको भक्ति का लौकिक रूपान्तर कहा जा सकता है - एक अशरीरी ऊर्ध्वगामी अतिक्रामी सर्वातिशायी भाव। और यह किसी भाव-प्रतिमा के लिए ही सम्बोधित है। वह भाव प्रतिमा वस्तुतः ईश्वर है या नहीं, अलौकिक है अथवा लौकिक - इसका कोई फैसला सम्बोधन की अस्पष्ट अनिश्चित प्रकृति से नहीं किया जा सकता। इसे लेकर पर्याप्त उहापोह भी होती रही कि यह अलौकिक अथवा आध्यात्मिक कुहासा किसी लौकिक वास्तविकता का आच्छादन है याकि सचमुच आध्यात्मिक है। मीरा के विषय में भी आधुनिक आलोचकों ने इसी दिशा में विवेचन किए हैं। इस प्रश्न को आगे के अनुखण्ड के लिए छोड़ते हुए यहाँ केवल इतना ही संकेत पर्याप्त और जरूरी है कि यह महादेवी के समाज का सांस्कृतिक पूर्वग्रह है कि स्वाधीनता का चुनाव करने वाली स्त्री के सामने अपनी पवित्रता को भी प्रमाणित करने की शर्त है। मीरा की स्वाधीनता को गाँधी के स्पर्श ने सामाजिक स्वीकृति देकर स्त्री की स्वाधीनता का नमूना बना दिया था, इसलिए भी प्रेमाभक्ति की साधिका मीरा उनके लिए अपना पूर्वज प्रतिरूप बन जाती हैं।

पारिवारिक दायरे से छिटकी हुई स्त्री जो न माँ, न बहू, न पत्नी और इसीलिए जिसकी स्वाधीनता से किसी को कोई असुविधा नहीं। इसीलिए भले ही मीरा घर छोड़कर निकलीं, सन्त-समाज यानी मर्दों के बीच में बैठीं, लोकलाज खोई लेकिन स्त्री की स्वाधीनता का आदर्श बनीं। महादेवी के समय में घर छोड़ने (या गौने से इंकार) या मर्दों के बीच उठने बैठने, का मतलब लोकलाज खोना भले न रह गया हो, किसी भी सामाजिक व्रत को धारण करने का मतलब विवाह और समाज सेवा में से किसी एक को चुन लेना जरूर था। "गोदान" में मालती जैसे चरित्र की रचना से प्रेमचंद ने भी इसी विचार को प्रतिष्ठा दी है।

मीरा ने भक्ति को विद्रोह की वाणी बनाया। महादेवी ने अपने प्रेम का नामकरण "असीम" के प्रति समर्पण की तरह किया। असीम के प्रति समर्पण से उन्होंने सीमाओं के विरुद्ध

विद्रोह किया। मीरा का यह समर्पण और यह विद्रोह ऐसी अमूर्त अवधारणा है जिसे असहमति और प्रतिरोध के किसी भी प्रसंग में आचरण के द्वारा मूर्त बनाया जा सकता है इसलिए उसकी प्रासंगिकता का क्षय कभी नहीं हो सकता।

18.8 मीरा के जीवन की कलात्मक पुनःरचना : संगीत, शोध, जीवनी, फिल्में इत्यादि

मीरा की जीवनकथा के तथ्य तब तक अल्पज्ञात, लगभग अज्ञात थे, लेकिन 1930 ई. के दशक में उनकी छवि सामाजिक मानस और साहित्यिक कल्पना पर छा चुकी थी। उनकी कविता में मिलने वाले प्रचुर आत्म-साक्ष्यों को बीन-बटोर कर जो तस्वीर बनती या गढ़ी जाती थी उसमें युवा-मन के लिए स्थायी आकर्षण की सामग्री जैसा कुछ था। प्रेम का ज्वर, मिलनकामना का ज्वार, बिरह का उत्ताप मिल कर ऊर्जातरंगों का प्रवाह प्रबल करते रहे होंगे। स्वाधीनता-संग्राम जैसे ऐतिहासिक दौर में समाज एक ओर मानसिक आयाम में आत्मालोचन से गुजरता है, सामाजिक आयाम में अब तक जो प्रथा और मान-मर्यादा व कुलधर्म की तरह स्वीकृत उन रूढ़ियों को रूढ़ियों की तरह देखने उनसे जूझने और उनको तोड़ने के लिए उत्सुक होता है और राजनीतिक आयाम में दमन किए प्रतिरोध की ऊर्जा और जूझ जाने के संकल्प से संचालित होता है। "प्रेम" ऐसे वातावरण में एक खासतौर से सार्थक और मूल्यवान भाव की तरह पहचाना और परिभाषित किया जाता है क्योंकि उसकी अपनी प्रबल, अदम्य ऊर्जा जूझने का बल, लड़ने का साहस और तोड़ने का दुस्साहस देती है। मीरा की भक्ति मूलतः प्रेम ही है। इसलिए वे इस दौर में विशेष रूप से प्रासंगिक बनीं।

ऐसे ऊर्जातरंगित वातावरण का साहित्य स्वच्छंदतावादी होता है। "छायावाद" हिन्दी का स्वच्छंदतावादी काव्यांदोलन है। मीरा की जो भाव-प्रतिभा गढ़ी गई वह मानो ऐसे वातावरण के लिए विशेष रूप से उपयुक्त थी, मानो वह इसी काल की अपनी भावसामग्री से गढ़ी गई थी।

स्वाभाविक था कि वह अपने रहस्य और आकर्षण के बूते पर कथाकारों-कलाकारों की कल्पना को उत्तेजना और चुनौती देतीं। वे उच्चतम कोटि की परिष्कृत रचनात्मकता से लेकर सामान्य लोकस्तरीय दैनिक स्कूली छात्रोचित रचनात्मक अभिव्यक्तियों तक के लिए समान रूप से आकर्षण का विषय बन चुकी हैं। वे जनमानस की कल्पना का अन्तरंग अंश हैं। यह उनकी स्वयंसिद्ध प्रासंगिकता है। कुल मिलाकर यह प्रभूत सामग्री है जिसका पूरा परिचय यहाँ न संभव है न प्रासंगिक। केवल कुछ बहुत विशिष्ट कृतियों की चर्चा यहाँ की जा रही है।

इस कल्पना ने मीरा-काव्य को एक सम्पूर्ण संगीत विधा की तरह विकसित किया जिसे हम चाहें तो अलग से मीरा संगीत का नाम भी दे सकते हैं। प्रसिद्ध संगीतकार विष्णु पलुस्कर ने मीरा को शास्त्रीयगायन की सांगीतिक परम्परा में शामिल किया और उनके शिष्य और प्रसिद्ध गायक श्री ओंकारनाथ ठाकुर "पग घुँघरु बाँध मीरा नाची रे" तथा "जोगी मत जा मत जा मत जा" को अपना स्वर देकर अमर कर दिया। रिकॉर्डिंग की तकनीक के विकास के साथ संगीत को सुरक्षित रख सकने की व्यवस्था ने भी इसे बढ़ावा दिया। केवल शास्त्रीय ही नहीं, अन्य सांगीतिक परम्पराओं में भी पनपता रहा। लोकसंगीत की तरह वाचिक धारा में प्रवाहित मीरा-काव्य को ही कभी संकलित करके लिखन्त में सुरक्षित किया गया था। आजतक भी अनेक शास्त्रीय गायकों के अतिरिक्त लता मंगेशकर, अनूप

जलोटा, हरिओम शरण इत्यादि व्यावसायिक गैर-व्यावसायिक भजनीक, सरल-शास्त्रीयसंगीत, लोकप्रिय संगीत फिल्म संगीत आदि आदि सांगीतिक परम्पराओं को मीरा-संगीत के द्वारा समृद्ध किया जाता है। बल्कि अब तो मीरा स्वयं अनेक भजनों की नायिका और विषयवस्तु बन चुकी हैं। 'इक राधा इक मीरा अन्तर क्या दोनों की प्रीत में बोलो इक प्रेम दिवानी इक दरस दिवानी' ऐसा ही एक प्रसिद्ध गीत है।

चित्रकला और मूर्तिकला के लिए भी मीरा एक लुभावना विषय है। मीरा के अनगिनत मूर्तिशिल्प और चित्र गढ़े और रचे जाते रहे हैं। प्रसिद्ध चित्रकार कनु देसाई ने मीरा को लेकर एक पूरी चित्रशृंखला रची थी। रिकॉर्ड, सी. डी. कैसेट के कवर और कैलेण्डरों से लेकर स्कूली छात्रों तक की चित्ररचनाओं में तानपुरा थाम श्वेत-वसना या गैरिकवसना नारीमूर्ति मीरा का पर्याय बन चुकी है।

मीरा के जीवन को लेकर कुछ महत्वपूर्ण फिल्में बनीं। फिल्म के इतिहास में उनका आर्काइवल महत्व स्थापित हो चुका है। सवाक् चित्र की तकनीक का आरंभ होते ही 1933 ई. में निर्मित हिन्दी की दूसरी सवाक् फिल्म राजरानी मीरा थी जो तब तक किसी ऐतिहासिक शोध और तथ्यात्मकता के अभाव में मीरा की कल्पित जीवन कथा पर आधारित थी। तमिल में भी मीरा के जीव को लेकर "मीरा" नामक फिल्म बनी जिसकी नायिका सुब्बुलक्ष्मी थीं। सुब्बुलक्ष्मी के गाए हुए मीरा के भजन मीरा-संगीत का नया प्रतिमान बने। सन 1947 में इसका हिन्दी रूपान्तर अतिशय लोकप्रिय हुआ। महात्मा गाँधी की प्रार्थनासभाओं में मीरा के भजन हमेशा ही विशेष महत्व की जगह रखते आए । वहाँ भी सुब्बुलक्ष्मी का मीरा गायन गाँधी जी को विशेष प्रिय हुआ। सन 1979 में गुलजार द्वारा निर्मित और निर्देशित तथा हेमामालिनी द्वारा अभिनीत "मीरा" में केवल कथा सुनाने की बजाय मीरा के चरित्र की व्याख्या और विश्लेषण का प्रयास भी दिखाई देता है। रेगिस्तानी भूमि पर "साँवरे के रंग राची" गाती नाचती मीरा भक्ति को स्वाधीनता के साहस के रूप में प्रस्तुत करती हैं और अन्त में सामाजिक धार्मिक संकीर्णता के पैरोकारों को अपना खून माफ़ करते हुए कृष्णमंदिर में जाकर विलीन हो जाती हैं। केदार शर्मा द्वारा निर्मित निर्देशित और नरगिस द्वारा अभिनीत "जोगन" भी एक आर्काइवल महत्व की मूल्यवान फिल्म है जिसकी नायिका मीरा तो नहीं हैं लेकिन नायिका का चरित्र मीरा के साँचे में ही ढाला गया है और मीरा के भजनों के माध्यम से ही नायिका के मनोभावों को उकेरा गया है।

अब स्त्री-विमर्श के उदय के बाद मीरा स्वतंत्र रूप से शोध और व्याख्या-विश्लेषण का विषय बन चुकी हैं। स्वाधीनचेता स्त्री की पूर्वज-परम्परा की निशानदेही करते हुए स्त्री-विमर्श ने मीरा को बड़े पैमाने पर रेखांकित किया है। ऐतिहासिक मीरा की जीवनी की पुनःरचना के लिए विस्तृत क्षेत्रकार्य हुआ है और मीरा से जुड़े अनेक भ्रमों का निवारण करते हुए "मीरा का जीवनवृत्त और काव्य" में मीरा के जीवन का एक तर्कसंगत, तथ्यसम्मत ढाँचा श्री कल्याणसिंह शेखावत ने खड़ा किया है। अनेक लेखों और मीरा-काव्य संकलनों की भूमिकाओं में मीरा की अनेक व्याख्याएँ हुई हैं। काव्यानुवाद भी हुए हैं। विदेशी विद्वानों ने भी इन शोधों में अपना योग दिया है।

कुल मिलाकर यह प्रभूत सामग्री है लेकिन हम हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी की हैसियत से मीरा का अध्ययन कर रहे हैं अतः अपने ध्यान का केन्द्रीय विषय साहित्य तक ही सीमित रखना उचित होगा।

18.9 मीरा और जैनेन्द्र

सन 1930 ई. के दशक में महादेवी जब अपनी कविताओं में अपने "आत्म" को मीरा के साँचे में गढ़ रही थीं तब प्रसिद्ध उपन्यासकार जैनेन्द्र कुमार के सन् पैंतीस में प्रकाशित प्रसिद्ध उपन्यास "सुनीता" के एक विशेष प्रसंग में नायिका सुनीता और उसके पति श्रीकान्त के बीच संवाद में मीरा के व्यक्तित्व की एक अलग सी व्याख्या मिलती है। गाँधीकृत मीरा की धारणा से भिन्न मीरा यहाँ प्रेम के उन्माद का चित्र बन कर प्रस्तुत हुई है। सुनीता के लिए भी वह प्रेम के अदम्य, दुर्निवार आह्वान के सामने बेबस विवेक की कथा है। इन दोनों को हम शायद स्त्री पुरुष दृष्टिकोणों का अन्तर भी समझ सकते हैं। महादेवी के सामने अपने वास्तविक समाज की ज़मीनी सच्चाइयाँ हैं जिनको भेद कर उन्हें वास्तविक स्त्री के लिए जगह बनानी है। उन्हें अपने विद्रोह को थोड़ा-थोड़ा करके छोटी-छोटी मात्राओं में समाज को परोसना है और एक मिकदार को स्वीकृति दिला चुकने के बाद अगले की तरफ कदम बढ़ाना है। अतः उनके लिए अपने वास्तविक और यथार्थ भाव का भी आदर्शीकरण ज़रूरी हो जाता है। अतः वह गाँधीकृत मीरा की व्याख्या में से सत्याग्रह के पवित्र विरोध का अनुसरण करती हैं। उनका आत्म किसी असीम, अरूप को निवेदित है। इसे उनकी समकालीन और परवर्ती आलोचना में आत्मगोपन और वास्तविकता पर आध्यात्मिकता के आवरण की तरह भी देखा गया है। महादेवी के सन्दर्भ में प्रेम पात्र का आध्यात्मिक है।

"सुनीता" में दो वास्तविक पुरुषों के बीच एक स्त्री है। वह प्रेम-त्रिकोण पर आधारित एक जटिल भावसंरचना का उपन्यास है। उपन्यास में एक प्रसंग है जिसमें मीरा के जीवन पर आधारित एक फिल्म देखते समय मध्यान्तर में पति पत्नी के बीच इस संवाद की योजना की गई है। उपन्यास में फिल्म को मीरा के बारे में बताया तो गया है लेकिन फिल्म का नाम नहीं दिया गया है। बहुत संभव है कि यह सन तैंतीस में निर्मित "राजरानी मीरा" का वास्तविक हवाला हो। यह भी संभव है कि उपन्यासकार ने अपने पात्रों की मनःस्थिति की झाँकी देने के लिए इच्छानुसार एक फिल्म और उसका प्रसंग गढ़ लिया हो।

यह व्याख्या तब तक के परिदृश्य पर मीरा के निर्मित व्यक्तित्व से खासी भिन्न है। इसमें मीरा के आचरण पर एक आदर्श गृहिणी का व्यक्तित्व आरोपित करने की बजाय दाम्पत्य के भीतर प्रेम की नैतिकता को पकड़ने और समझने और एक नवीन नैतिकता को परिभाषित करने की मंशा दिखाई देती है। परम समर्पित प्रेम को एक अदम्य अभिप्रेरक की तरह नैतिक अनैतिक की सीमाओं से परे और ऊपर एक अलग भावनात्मक पवित्रता से मण्डित किया गया है। यहाँ पात्र नहीं, भावना ही आध्यात्मिक है और शरीर भी उस आध्यात्मिकता का अंग है। यह एक संक्षिप्त प्रसंग है, विश्लेषण की सुविधा के लिए यहाँ पूरा ही उद्धृत है -

सुनीता की प्रतिक्रिया :

"वह मीराबाई को समझना चाहती है। मीरा के पति की ओर से वह मीरा को भर्त्सना भी देना चाहती है, फिर भी मीरा को समझना चाहती है। मीरा पतिव्रता हुए बिना भी अरे, क्यों उसकी श्रद्धा की भाजन बनी है ? वह अपने से पूछती है, "अरे, क्यों ?" पति ही तो परम श्रेय है। उन्हें छोड़, उनसे विमुख, किसी और ही की ओर उन्मुख होने पर भी मीरा लांछित क्यों नहीं है ? वह अपने से झगड़ कर चाहती है, मीरा को खण्डिता और लांछित ठहरा दे। किन्तु मीरा के प्रति उसके भीतर का स्नेह और वेदना उमड़ी ही आती है, भरी ही आती है। वह मीरा को समझ लेना चाहती है। मीरा को, जो राणा की रानी है, पर राणा को

भूलकर और रानीपन को बिसार जाने किस साँवलियो के पीछे कैसी न मदमाती बन गयी। सुनीता उस मीरा को पा लेना चाहती है। उसका मन पति के लिए विह्वल पीड़ा से भर गया है .....

....उस मीरा को वह समझना चाहती है जो पति में सब श्रेय पा लेने के कर्तव्य से छूट गयी। मीरा के लिए दो बूँद आँसू डाल कर वह पूछना चाहती है", अरी प्रेममयी, तैने वह कौन सा प्रेम पाया जिसने तुझे कठिनता दी कि पति के हृदय की पीड़ा को तू बिना पिघले सह ले? अरी, तू किस भयंकर प्रेम को दुनिया को दिए जा रही है जो अपने पति के जी को तोड़ता है और उसको टूटते देखकर भी वह प्रेम प्रेम ही रहता है। ओ मीरा तू अपने मन की बिथा मुझे पाने दे, मैं भी आज घोर बिथा अपने ऊपर झेल लेना चाहती हूँ। वह बिथा जो आनन्द की तोल के ही बराबर है, नहीं तो शेष सबसे भारी है।"

श्रीकान्त की प्रतिक्रिया -

" और राणा कुम्भा ..... सुनीता मैं समझता हूँ, उसके मन की वेदना कहानी की जान है ... मीरा के लिए विष का प्याला मैं समझ सकता हूँ। धर्मविद्वेष मैं समझ सकता हूँ। मीरा को तोप से उड़ा दे तो मैं उसकी व्यथा को समझ सकता हूँ। प्रेम ही क्या जीवन नहीं है! उससे वंचित होकर व्यक्ति कैसे न जड़ होकर रह जाए ? सुनो राणा के लिए बिल्कुल पागल हो जाने की बात है, मैं तो उसकी दृढ़ता पर स्तम्भित हूँ कि वह केवल निर्दय ही होकर रह गया।" ".....लेकिन कृष्ण बनवारी की मूर्ति की वह भक्ति जो व्यक्ति को सब कर्तव्यों से विमुख कर दे और उस कृतज्ञता को औचित्य भी प्रदान करे मेरी समझ में नहीं आती। मीरा मेरी समझ में नहीं आती .....सुनीता तुम्हें हुआ क्या है? बोलो, तुम कुछ वह अनुभव करती हो जो समस्त लौकिक कर्तव्यों से तुम्हें मुक्त कर दे? यदि ऐसा कुछ है तो उसका बहिष्कार करना ही होगा।"

सुनीता की प्रतिक्रिया -

"अलौकिक ही कुछ हो सकता है जो लौकिक का आधिपत्य अस्वीकार कर दे, बुद्धि अतीत जो है, उस पर चलने के लिए बुद्धि के पैर और तर्क-स्टेप्स काम नहीं देंगे। इससे मैं सहमत हूँ कि लौकिक तो अलौकिक का बहिष्कार ही करे, पर अलौकिक इससे असत न हो जाएगा। मीरा दस बीस नहीं हुई हैं, इससे अलौकिक को निश्चिन्त रहना चाहिए कि अलौकिक की लौकिक पर हावी होने की योजना नहीं है। मैं समझती हूँ, लौकिक के दिशा-दर्शन, मार्ग-दर्शन के हेतु से अलौकिक यदा कदा घटित होता है। बहिष्कृत तो उसे करना ही होगा, पर उससे चेतावनी भी ले लेनी होगी। मीरा को समझती मैं भी नहीं हूँ पर समझती हूँ कि समझी जा सकती है। मीरा के हृदय को राणा के हृदय-प्रेम की प्यास से कहीं उत्कृष्ट प्रेम की व्यथा को धारण रखे रहना पड़ा।"

श्रीकान्त की प्रतिक्रिया -

"राणा के प्रति मीरा ने अन्याय नहीं किया? कि राणा के प्रति मीरा ने अप्रेम भाव नहीं दरसाया? अप्रेम अन्याय है ।"

सुनीता की प्रतिक्रिया -

"मैं तो इतना ही कहती हूँ कि राणा ने अन्याय नहीं किया। यह मैं राणा की ओर से भी कहती हूँ, मीरा की ओर से भी कहती हूँ। राणा के मन की व्यथा की ज्वाला में जिन कृत्यों को क्रूर कहा जावे वे ऐसे भस्म हो जाते हैं जैसे यज्ञ में समिधा। मैं तो राणा के साथ रो

ही सकती हूँ। पर मीरा के साथ भी मुझे इजाजत दे दो कि मैं रोना चाह लूँ। मीरा का मन जानने के बाद मीरा को दण्ड देने योग्य जी नहीं रखा जाएगा।"

जैनेन्द्र कुमार ने गाँधी के विचार प्रेम और अहिंसा को बुनियादी सामाजिक जड़ताओं के खिलाफ़ विद्रोह के हथियार की तरह देखा है। सुनीता के माध्यम से वे मीरा के बारे में एक भिन्न तरह की अनुभूति का चित्र खींचते है। सुनीता मीरा को समझना चाहती है, "प्रेम की विथा" के साथ तादात्म्य का अनुभव करना चाहती है, लांछनीय प्रेम के प्रबल आकर्षण की "अनैतिक" सत्ता को स्वीकृति देने की इच्छा जता कर बताना चाहती है कि प्रेम अपनी पीड़ा और अदम्यता के कारण नैतिक और अनैतिक की चिन्ता के दायरे से बाहर चला जाता है। त्यागपत्र की मृणाल की तरह "सुनीता" की नायिका भी प्रेम को पौरुष की ईर्ष्यालु अधिकार भावना के उपचार का हथियार बनाती है। लेकिन वह एक उपन्यास की नायिका है और रचनात्मक सृजन है। वह महादेवी की तरह वास्तविक स्त्री नहीं है। वह अपने लेखक की कल्पना की जमीन पर मनमाना विकल्प चुन सकती है। जैनेन्द्र उसे नैतिकता की सीमाओं के भीतर ही रखते हुए उल्लंघन के पहले ही वापस ले आते हैं फिर भी जैनेन्द्र को उसके लिए बहुत से प्रवादों का पात्र बनना पड़ा।

18.10 भक्ति, अध्यात्म और आधुनिक मन : मीरा की भक्तिभावना

मीरा की जीवनकथा को केवल उसके राजनीतिक और सामाजिक आयामों में अपने लिए सार्थक और प्रासंगिक बना लेना आधुनिक दृष्टि के लिए आसान है। लेकिन भक्ति मीरा का सत्य है। और न केवल मीरा बल्कि समूचे भक्तिकाव्य को लेकर आधुनिक दृष्टि की असहजता को वस्तुतः उसकी सीमा या असमर्थता की तरह देखा जा सकता है। आधुनिकता की परिभाषा का मूल तत्व वैज्ञानिक दृष्टिकोण है। 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में भारतीय नवजागरण में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का आगमन हुआ जिसके पीछे यूरोपीय ज्ञानोदय की अवधारणाएँ प्रेरणा का काम कर रहीं थीं। ईश्वर की सत्ता और भक्तिमय समर्पण या ऐसी कोई भी वस्तु जिसके पीछे तर्क और प्रमाण की बजाय एक तर्कातीत, प्रश्नातीत, स्वयंप्रकाश आस्था की टेक हो, उसके लिए सन्दिग्ध है। इसके साथ प्रगतिवादी वैचारिक आग्रह को भी जोड़ दिया जाय तो भक्ति को समझने के प्रयास की कोई गुंजाइश ही नहीं बचती।

मीरा के जीवन के विषय में आधुनिक विश्लेषण इसी आग्रह से संचालित दिखाई देता है। पद्मावती "शबनम" ने "मीरा एक अध्ययन" में और डॉ. सावित्री सिन्हा ने "मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ" में मीरा के प्रेम को किसी वास्तविक प्रेमी के लिए निवेदित माना है। "शबनम" जोगी के लिए सम्बोधन को ही इस बात का प्रमाण मानती हैं कि मीरा का संबंध किसी कनफटे जोगी के साथ था। स्त्री-विमर्श के अन्तर्गत जो भी सोच-विचार मीरा को लेकर हुआ है वह इस आधुनिक मानसिकता की इस बेबसी से उद्भूत है कि भक्तिकाव्य की प्रासंगिकता की कोई भी संभावना अगर है तो केवल आर्थिक और राजनैतिक या दैहिक सन्दर्भों में उसकी व्याख्यात्मक योग्यता तक सीमित है।

मीरा के सत्व को विशेषतः और भक्तिकाव्य के सत्व को सामान्यतः समझने के लिए इसे एक प्रदत्त मान कर चलना होगा कि ईश्वर की सत्ता भले सन्दिग्ध हो, भक्ति की सत्ता असन्दिग्ध है क्योंकि भक्त उसका प्रमाण है। भक्ति के वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अर्थ भक्ति का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण है। और भक्तिकाव्य उसका प्रमाण है।

मीरा और अन्य भक्तों के सन्दर्भ में वास्तविकता या प्रामाणिकता की मूल समस्या इस समाधान से हल नहीं हो जाती कि उनका "आलम्बन" आलौकिक नहीं, लौकिक था। उसे हम लौकिक मान भी लें तो भी भावना के स्वरूप और अनुभूति के आकार का प्रश्न समाधानहीन रह जाता है जो अभिव्यक्ति के प्रमाण से आलौकिक सिद्ध होती है। मानना पड़ेगा कि भक्ति की स्वयंप्रकाश आस्था आत्मशक्ति के रूप में विकसित होकर कोई अलौकिक आयाम धारण कर लेती है। आधुनिक मन की सीमा का एक पक्ष यह भी है कि "आलौकिक" को उसने चमत्कार और अन्धविश्वास का पर्याय बना कर अपने शब्दकोश और विचारणीय वस्तुकोश से खारिज कर दिया है। इसलिए पद्मावती "शबनम" का यह निष्कर्ष कि "मीरा का जोगी के नाम सम्बोधन दर अस्ल किसी नाथपन्थी जोगी के साथ उनके असली संबंध की अभिव्यक्ति है" या कुमकुम सांगरी का यह विचार कि "मीरा की कृष्णभक्ति ऐच्छिक दासता के कर्म का व्यक्तिगत चुनाव है" ठेठ आधुनिक तर्कपद्धति का नमूना कहे जा सकते हैं।

इस विषय में परीता मुक्ता का विवेचन ध्यान देने योग्य है। पद्मावती "शबनम" की धारणा के विषय में उनका कहना है कि मीरा के पद जिस प्रतीकात्मकता, कल्पना और दार्शनिक सांकेतिकता के भीतर विन्यस्त हैं वे भक्तिसंसार की आमफ़हमी (कॉमनसेन्स) या सहजबोध की रचना करते हैं। इसके भीतर सगुण से निर्गुण और वापस निर्गुण नाथपंथ तक के बीच एक तरह आवागमन और मुक्तहस्त आदान-प्रदान चलता है। लेकिन पद्मावती "शबनम" की व्याख्या से वे सब केवल एक यौनिक संबंध में विघटित होकर रह जाते हैं जबकि भक्ति, मीरा और उनकी कविता की ज़िन्दगी की आधारशिला है।

कुमकुम सांगरी के मूल्यांकन के विषय में वे कहती हैं कि उनके आलेख में सारे धार्मिक विश्वासों को स्मृतियों, पुराणों और धर्मशास्त्रों से तथा माया के सर्वातिशायी प्रत्यय से उद्‌भूत मानकर विश्लेषित किया गया है। कुमकुम सांगरी इस बात की तरफ ध्यान नहीं देतीं कि कबीर और मीरा जैसे भक्तों की रचना एक ऐसी अभिव्यक्ति है जिसके पास अपना एक लोकप्रिय सामान्य-जनाधार है और जिसका इन शास्त्रीय ग्रन्थों के साथ कोई सीधा इकहरा संबंध नहीं है। मीरा और उनकी कविता भी उसी समाज और सांस्कृतिक परिवेश में रहती है जो धर्म से आप्लावित रहता आया है। जिसके अस्तित्व की जड़ें ऐसे समाज में रोपी रहती हैं। उसके अन्तःकरण की संरचना या आत्म के गढ़न्त की दिशाएँ आस्था के द्वारा समायोजित होती हैं।

इस बात की अनदेखी करके कुमकुम सांगरी मीरा की आविष्ट धार्मिकता को "ऐच्छिक दासता का कर्म" और एक प्रगतिशील परम्परा की निशानदेही में बाधा पाती है। कहने की ज़रूरत नहीं कि यह प्रगतिवाद स्वयं इतिहास-रचना के इकहरे नमूने तक सीमित है। उसके लिए इस भक्ति को अधिक से अधिक एक पलायन के रूप में देखना संभव है। इस तथाकथित दास्तां की सबल आत्मशक्ति को पहचानना उसके लिए संभव नहीं जिसके सहारे मीरा -

"एक कुल लाजे मीरा आपणो, दूजो बंस राठौड़
तीजा लाजै जी मीरा मेड़तो, चौथो गढ़ चित्तोड़
भक्ति छोड़ो हरिनाम की"

के जवाब में निर्भय होकर कहती है -

"एक कुल त्याराँ राणा आपणा, दूजो बंस राठौड़,
तीजौं त्याराँ जी राँणा मेड़तों, चौथे गढ़ चित्तोड़
भक्ति कराँजी भगवान की"

और भक्ति को अपनी अस्मिता में, अपनी "पत" में बदल देती हैं। आस्था के इस आत्माग्रह और सबल अभिनिवेश की ओर ध्यान दिए बिना यह समझना मुश्किल है कि "अलौकिक" की धारणा में "असामान्य लौकिक" का अर्थ निहित है जो पलायन नहीं बल्कि भक्ति की वस्तुतः विलक्षण और असामान्य, अडिग, अविचल, अटूट आस्था का संकेत देता है जिसके तहत विकट विरोध और भीषण अत्याचार भक्त के लिए अपनी आस्था की परीक्षा की कसौटी और अपनी आत्मशक्ति के लिए चुनौती बन जाता है।

यदि आधुनिकता को हम अपने लिए निपट भारतीय संदर्भ में परिभाषित करें और अपनी सांस्कृतिक जड़ों को उस परिभाषा में शामिल करें तो मीरा के इस आयाम की प्रासंगिकता की तलाश भी संभव होगी।

18.11 सारांश

मीरा का महत्व न केवल उनके अस्तित्व की सामाजिक, राजनीति, आर्थिक आदि काल की सीमाओं का अतिक्रमण करने में है अपितु, वे स्त्री अस्तित्व के दायरे से भी बाहर आती है। इस इकाई में हमने, अपने युग के संदर्भ में मीरा की प्रासंगिकता को मीरा के विषय में प्राप्त सूचनाओं का उपयोग करते हुए परखने का प्रयत्न किया है। मीरा अपने मातृकुल और पतिकुल दोनों ही परिवेशों में स्त्री की स्थिति और सत्ता को अपनी शर्तों पर परिभाषित करती दृष्टिगत होती है। भक्तिकाल के व्यापक परिवेश में भी वे तत्कालीन आचार्यों और मठाधीशों के कोप का भाजन बनीं। इसका मूल कारण उनकी स्वाधीन चेतना और अधीनता को अस्वीकार करना था। साथ ही, सामान्य जनता के बीच उनकी प्रतिष्ठा और सम्मान को सहज स्वीकृति मिल गई थी।

आधुनिक युग के आरंभ से लेकर अब तक मीरा के पुनः पाठ और उनकी प्रासंगिकता के आविष्कार का एक सिलसिला चलता रहा है। हमारी संगीत की परंपरा में मीरा की कविता को सुरक्षित रखा गया है। मीरा के काव्य के प्रचार प्रसार में भजन मण्डलियों का भी पर्याप्त योगदान है। इसके साथ–साथ मीरा की आधुनिक छवि निर्मित करने में महात्मा गांधी की भूमिका भी महत्वपूर्ण थी। उन्होंने मीरा को स्वीकृति और सत्ता प्रदान की। मीरा स्वाधीन स्त्री के व्यक्तित्व का साँया बन गई। मीरा के जीवन की कलात्मक पुनःरचना भी संगीत–शोध, मीरा की जीवनी तथा उन पर आधारित फिल्मों के माध्यम से की गई। मीरा के अनेक चित्र गढे गए और मूर्तियों का निर्माण भी किया गया।

स्त्री–विमर्श के उदय के बाद मीरा पर स्वतंत्र रूप से अनेक शोध किए जा रहे हैं। मीरा की कविता के संकलनों की भूमिका में मीरा की अनेक व्याख्याएँ हुई हैं। आज के संदर्भ में मीरा की कविता को नवीन दृष्टिकोण से जानने और समझने का सिलसिला आज भी जारी है।

18.12 अभ्यास प्रश्न

बोध प्रश्न 1

1. अतीत का वर्तमान के साथ क्या संबंध है?
2. "लिखित शब्द और आर्ष या आस वाचिक शब्द अपने तात्कालिक संदर्भ से मुक्त हो जाते हैं।" इस कथन का आशय सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
3. "प्रासंगिकता की कसौटी पर साहित्यिक मूल्यांकन बदलता रहता है।" इस कथन से आप क्या समझते है? सार्थकता और प्रासंगिकता में परम्पर क्या संबंध और क्या अन्तर है?
4. अतीत के साहित्य को प्रासंगिक बनाने में पाठक व आलोचक की क्या भूमिका है?
5. नयी युग चेतना व भाषा में क्या संबंध विरोधाभास होता है?
6. सामान्यतः अतीत और विशेषतः मीरा के पुनः मूल्यांकन के संबंध में किस युगान्तर की बात की गयी है?
7. "आधुनिक काल के आरंभ में मीरा के जीवन के विषय में प्राप्त सूचनाएँ इतनी विरल थीं कि उनकी प्रतिमा को मनचाहे साँचे में ढाला जा सकता था।" इस कथन से आप क्या समझते हैं?
8. "स्वाधीनता संग्राम में मीरा को भजनसंसार और भजन मण्डलियों के आधिपत्य से बाहर निकालने का एक ऐतिहासिक कारण मौजूद था।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।
9. महादेवी और सुनीता का अन्तर स्त्री और पुरुष के दृष्टिकोण का अन्तर है। इस कथन की सतर्क समीक्षा कीजिए।
10. "सत्याग्रह" को गाँधी जी ने कैसे परिभाषित किया और मीरा को आदर्श सत्याग्रही बनाने के लिए क्या तर्क दिए?
11. गाँधी के आधुनिक स्त्रीवादी आलोचक मीरा के विषय में उन पर क्या आरोप लगाते हैं ? क्या आप इन आरोपों से सहमत हैं ? सकारण उत्तर दीजिए।

खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

1. मीरा का काव्य - डॉ. निश्वनाथ त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. Upholding the common life — the community of Mirabai - Parita Mukta, Oxford University Press, Delhi.
3. मीराः एक पुनर्मूल्यांकन - संपादक डॉ. पल्लव आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा।

SOH-IGNOU/P.O. 1T/November, 2014

ISBN : 978-81-266-6821-2